मई-2021
वर्ष–85 । अंक– 5 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

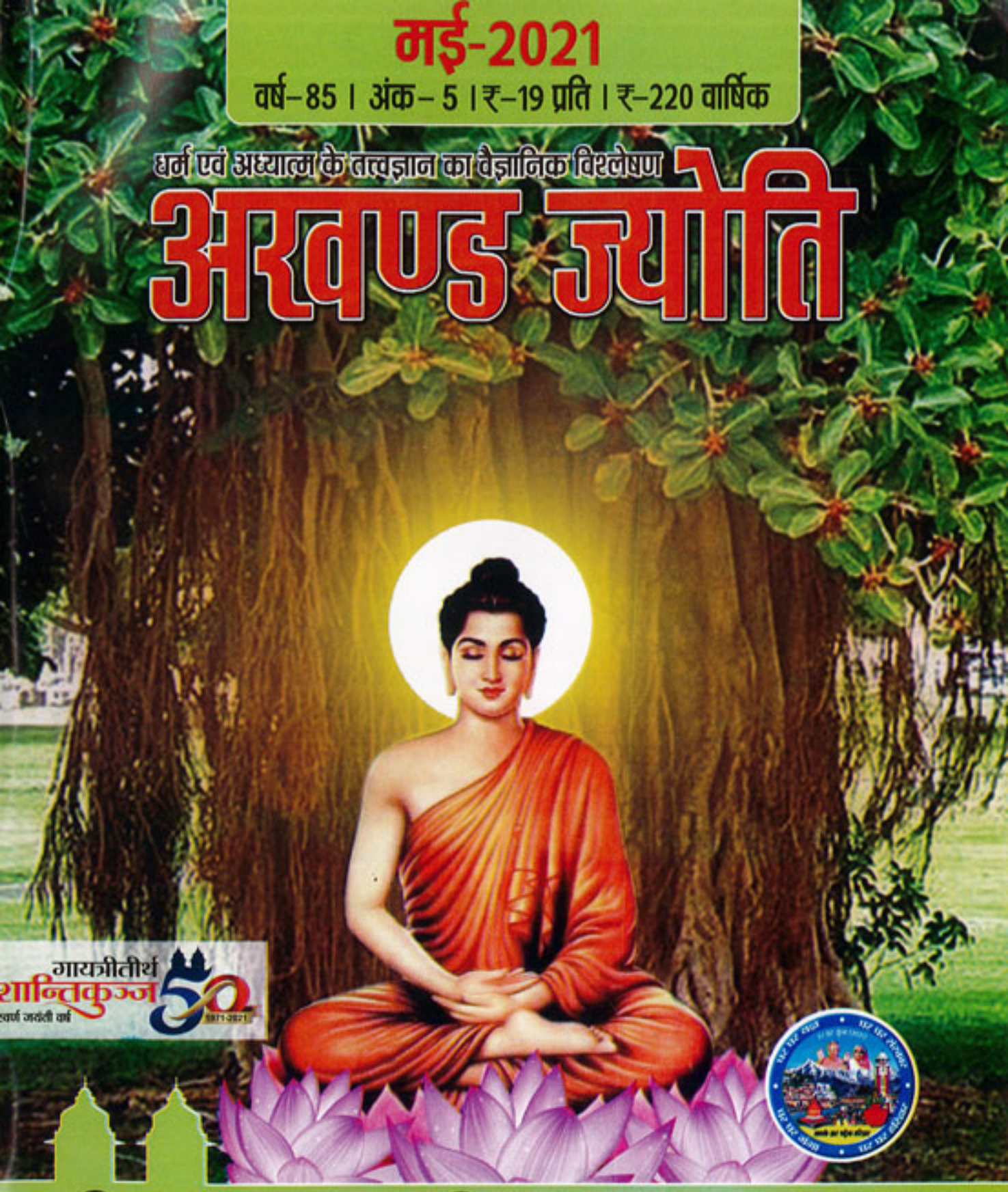

13 शांत मन में बसता है ध्यान
23 ईश्वरीय प्रतिनिधि स्वामी विवेकानंद
41 नई पीढ़ी के निर्माण की पहल
51 गौ आधारित संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था का हो

पहले अपनी सेवा और सहायता करो

"इस संसार में अनेक प्रकार के पुण्य और परमार्थ हैं। शास्त्रों में नाना प्रकार के धर्म अनुष्ठानों का सविस्तार विधि-विधान है और उनके सुविस्तृत माहात्म्यों का वर्णन है। दूसरों की सेवा-सहायता करना पुण्यकार्य है, इससे कीर्ति, आत्मसंतोष तथा सद्‌गति की प्राप्ति होती है। पर इन सबसे बढ़कर भी एक पुण्य-परमार्थ है और वह है– आत्मनिर्माण। अपने दुर्गुणों को, कुविचारों को, कुसंस्कारों को, ईर्ष्या, तृष्णा, क्रोध, डाह, क्षोभ, चिंता, भय एवं वासनाओं को विवेक की सहायता से आत्मज्ञान की अग्नि में जला देना इतना बड़ा यज्ञ है जिसकी तुलना सहस्र अश्वमेधों से नहीं हो सकती। अपने अज्ञान को दूर करके मन मंदिर में ज्ञान का दीपक जलाना भगवान की सच्ची पूजा है। अपनी मानसिक तुच्छता, दीनता, हीनता, दासता को हटाकर निर्भयता, सत्यता, पवित्रता एवं प्रसन्नता की आत्मिक प्रवृत्तियाँ बढ़ाना करोड़ मन सोना दान करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हर मनुष्य अपना-अपना आत्मनिर्माण करे तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। फिर मनुष्यों को स्वर्ग जाने की इच्छा करने की नहीं, वरन देवताओं के पृथ्वी पर आने की आवश्यकता अनुभव होगी। दूसरों की सेवा-सहायता करना पुण्य है, पर अपनी सेवा-सहायता करना इससे भी बड़ा पुण्य है। अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्थिति को ऊँचा उठाना, अपने को एक आदर्श नागरिक बनाना इतना बड़ा धर्मकार्य है, जिसकी तुलना अन्य किसी भी पुण्य-परमार्थ से नहीं हो सकती।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

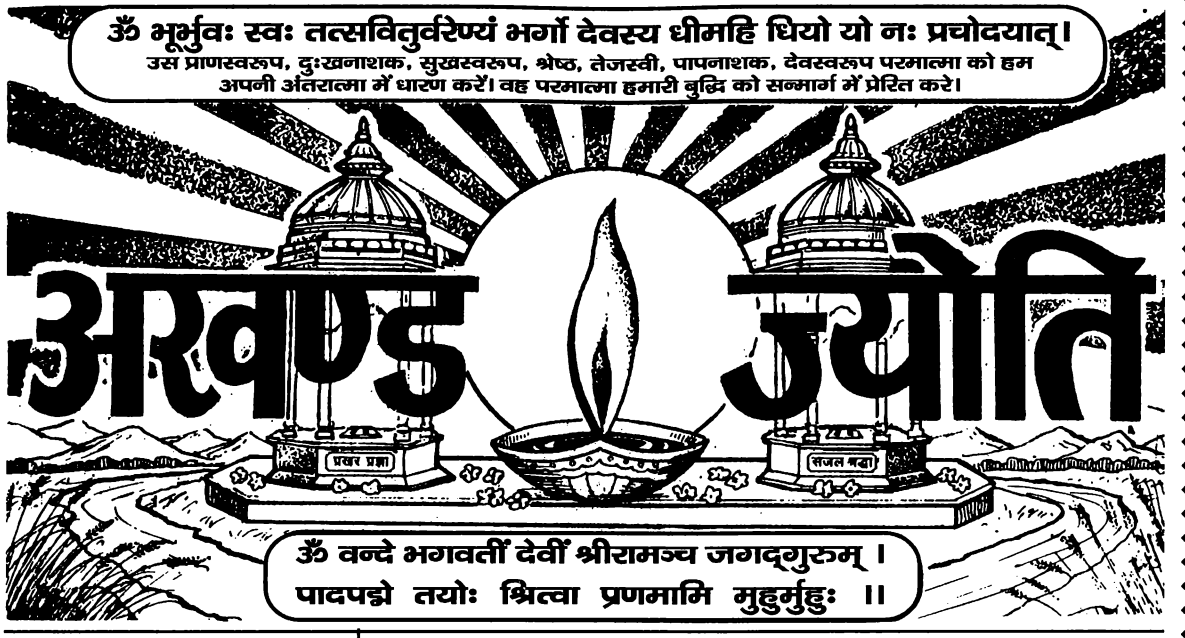

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 05
मई	: 2021
वैशाख-ज्येष्ठ	: 2078
प्रकाशन तिथि	: 01.04.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	
भारत में	: 5000/-

सौभाग्य

मनुष्य के जीवन में कष्ट-कठिनाइयों से गुजर निकलने के बाद पर्व-त्योहारों को मनाने का क्रम सदा से चलता आया है। शीत का प्रकोप शांत हो जाने के उपरांत होलिका दहन के रूप में आंतरिक परिष्कार की अग्नि का प्रज्वलन और बाह्य परिवर्तन के रूप में दिनमान की ऊर्जा का विस्तार—एक पर्व के रूप में ही मनाया जाता है। वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर दीपावली पर्व भी एक नए परिवर्तन का स्वागत करने की ओर इशारा करता रहा है। आंतरिक उल्लास व सामाजिक सौहार्द, दोनों मिलकर पर्व-त्योहार का प्रतीक बनते हैं। वर्तमान समय को भी एक परिवर्तन का महान पर्व कहा जा सकता है; क्योंकि इस समय में भी तमिस्रा का पलायन और प्रभाकर का आगमन प्रस्तावित है। युग संधि के इस काल को अवांछनीयता के पलायन और आदर्शवादी उत्कृष्टता के पदासीन होने के रूप में देखा जा सकता है।

अँधेरा जाने को हो और भगवान सूर्य उदय होने वाले हों तो उनके आगमन का संकेत पर्वत शिखरों के ऊपर पड़ने वाली रश्मियों से लगाया जा सकता है। प्रभात परिवर्तन का दृश्य पहाड़ों की चोटियों से ही देखा जा सकता है। इस महापरिवर्तन की आहट भी प्रथम रूप से उन्हीं को अनुभव होगी, जिन्हें महाकाल ने अपनी योजना में वरिष्ठ सहायक की भूमिका का सौभाग्य प्रदान किया है। ऐसे समय में ये जाग्रत आत्माएँ मूकदर्शक न रहकर अपनी भूमिका का निर्वहन करेंगी और मूर्द्धन्यों की तरह जागेंगी व तमस् का अंत करने को उद्यत होंगी, इसमें किसी को जरा-सी भी शंका नहीं रह जानी चाहिए।

पूर्वजन्मों के सुसंस्कारों के आधार पर ही यह सुयोग बन पाता है कि ऐसी जाग्रत आत्माएँ अग्रिम भूमिका निभाने को तत्पर हो पाती हैं अन्यथा ऐसे व्यक्तियों की संख्या भी पर्याप्त है, जो असमंजस की स्थिति में पड़कर अपना जीवन व मिला हुआ यह अवसर और सौभाग्य—यों ही व्यर्थ गँवा देते हैं। मात्र आदर्शवादियों में ही सत्साहस को अपनाने की व उसके अनुरूप गरिमामय कदम उठाने की परंपरा रही है। महान व्यक्ति हर रोज जन्म नहीं लिया करते। वे कभी-कभी ही इस धराधाम पर आकर इसको महिमामंडित करते हैं। गायत्री परिवार का प्रत्येक परिजन उन्हीं गौरवशालियों में से एक है।

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- सौभाग्य 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  समग्र शिक्षा देता गायत्री विद्यापीठ का प्रयोग 5
- मनोनिग्रह कुछ ऐसे साधें 7
- संत तुकाराम की ईश्वरभक्ति 9
- **पर्व विशेष**
  मातृ दिवस का सच्चा अर्थ 11
- शांत मन में बसता है ध्यान 13
- ऐसे होती है परमानंद की अनुभूति 15
- कड़ी मेहनत से मिलती है सफलता 17
- आवश्यक है बच्चों की सुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता 19
- सबसे करें प्रेमपूर्ण व्यवहार 21
- ईश्वरीय प्रतिनिधि स्वामी विवेकानंद 23
- चिकित्साशास्त्र के जनक—आचार्य चरक 26
- किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से बाहर निकलें 28
- महर्षि दयानंद के जीवन से मिलतीं दिव्य प्रेरणाएँ 29
- संवेदना से जुड़ने से है सेवा की सार्थकता 31
- समस्या का सामना ही है उसका समाधान 34
- स्वस्थ जीवनशैली के साथ समग्र चिकित्सकीय दृष्टिकोण भी है जरूरी 35
- **चेतना की शिखर यात्रा—224**
  गायत्री योग का प्रवर्तन 39
- नई पीढ़ी के निर्माण की पहल 41
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—145**
  मौन-साधना के प्रभाव 44
- प्रभावशाली संवाद के आधारभूत सूत्र 46
- श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् 48
- **युगगीता—252**
  दंभी, दुराग्रही एवं दुःखी होते हैं आसुरी वृत्ति से युक्त मनुष्य 49
- गौ आधारित संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था का हो व्यापक प्रसार 51
- जीवन को बचाना है तो वृक्षारोपण करना पड़ेगा 53
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2**
  परिव्राजक परंपरा का पुनर्जीवन (उत्तरार्द्ध) 55
- **विश्वविद्यालय परिसर से—191**
  घर-घर अलख जगाता विश्वविद्यालय 62
- **अपनों से अपनी बात**
  मानवीय दृष्टिकोण के परिवर्तन को समर्पित शांतिकुंज 64
- शुद्ध बुद्ध प्रज्ञावतार (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

नवम अवतार—बुद्धावतार

मई-जून, 2021 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	07 मई	वरूथिनी एकादशी
शुक्रवार	14 मई	परशुराम जयंती/ अक्षय तृतीया
सोमवार	17 मई	आद्यशंकराचार्य जयंती
मंगलवार	18 मई	सूर्य षष्ठी
रविवार	23 मई	मोहिनी एकादशी
मंगलवार	25 मई	नृसिंह जयंती
बुधवार	26 मई	बुद्ध पूर्णिमा
रविवार	06 जून	अपरा एकादशी
गुरुवार	10 जून	वट सावित्री व्रत
रविवार	13 जून	महाराणा प्रताप जयंती
बुधवार	16 जून	सूर्य षष्ठी
रविवार	20 जून	गायत्री जयंती/गंगा दशहरा/पूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस
सोमवार	21 जून	निर्जला एकादशी
गुरुवार	24 जून	कबीर जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

समग्र शिक्षा देता गायत्री विद्यापीठ का प्रयोग

वर्तमान समय में मानवता ऐतिहासिक क्रांतियों के मार्ग से होकर गुजर रही है। पुराने तौर-तरीके बदल रहे हैं और अभी पूरी तरह से एक नया अध्याय निकलकर के भी नहीं आ पाया है। ऐसे में स्वाभाविक तौर पर यह प्रश्न निकलकर आता है कि ऐसे अनिश्चितता के वातावरण में, जहाँ यह तय न हो सके कि कल एक वायरस का हमला पूरे विश्व को हफ्तों के लिए बंद कर देगा, ऐसे में आने वाली पीढ़ी को किस भविष्य के लिए तैयार किया जाए?

यदि इसी प्रश्न को कुछ इस तरह से सोचकर देखा जाए कि इस वर्ष में जन्म लेने वाला बालक 2051 आते-आते 30 वर्ष का हो रहा होगा और इसकी पूर्ण संभावना है कि यदि कोई अनहोनी न घटे तो वो सन् 2100 के प्रवेश के समय भी जीवित होगा तो हम आज उसे ऐसी क्या शिक्षा दें, ताकि वो उसे कुशलतापूर्वक 22वीं सदी का हिस्सा बना सके।

इस प्रश्न के उत्तर की यदि समीक्षा करें तो लगता है कि दुर्भाग्यवश आज की शिक्षा बच्चों को 22वीं सदी की तो छोड़ दें, सन् 2050 के लिए भी ढंग से तैयार नहीं कर पा रही है। यह ठीक बात है कि भविष्य का समग्र आकलन कभी भी संभव नहीं है, पर वर्तमान परिस्थितियों में और वर्तमान वैज्ञानिक विकास की दौड़ में यह कुछ और भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण हो गया है।

आज जब वैज्ञानिक समुदाय नए अंगों, नए मस्तिष्कों को बनाने की दौड़ में लगा है, आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस से लेकर ऑटोमेशन दुनिया की दिशा बदलने में संलग्न हैं, नोवेल कोरोना वायरस से लेकर अनेक नूतन एवं अभिनव बीमारियाँ इनसानियत के सामने संकट का बादल बनकर खड़ी हैं—ऐसे में आने वाले भविष्य का आकलन और उसके अनुसार बच्चों के शैक्षणिक विकास का निर्धारण और भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

उदाहरण के तौर पर यदि कोई अकबर के समय में पैदा हुआ होता तो जहाँगीर का समय आने तक विश्व बहुत ज्यादा नहीं बदला था। वर्तमान समय में तो एक फोन ही अगले साल तक आउटडेटेड हो जाता है। एक सॉफ्टवेयर पर महारत हासिल करने वाले, अगले साल तक अपनी प्रासंगिकता गँवाने लगते हैं। इसीलिए आज यह अनुमान लगा पाना कि 30 साल बाद लोगों की आजीविका का प्रधान माध्यम क्या होगा—मुश्किल-सा हो जाता है। 30 साल पहले भला कौन जानता था कि अनेक लोग यूट्यूब और स्नेपचैट या टिकटॉक पर वीडियो बनाकर ही अपनी आजीविका चला रहे होंगे? इसीलिए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि जो हम अपने बच्चों को आज विद्यालयों में पढ़ा रहे हैं—इसमें से कितना आने वाले वर्षों में उपयोगी या प्रासंगिक रह सकेगा।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों को ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी देने पर केंद्रित है। आज से सौ साल पहले शायद यह तरीका उपयोगी रहा होगा; क्योंकि तब जानकारियाँ मुश्किल से उपलब्ध होती थीं, पर आज के समय में तो लगभग हर प्रकार की जानकारी, विश्व के हर कोने में उपलब्ध है। विकीपीडिया से लेकर टेड टॉक्स और निःशुल्क ऑनलाइन डिग्रियाँ तक उपलब्ध हैं। ऐसे में प्रश्न उठता है कि क्या विद्यार्थियों को और ज्यादा जानकारी से भर डालना उचित है या इसका कोई भी उपयोग आने वाले वर्षों में रहने वाला है?

इसके साथ ही वर्तमान शिक्षा-प्रणाली कम उम्र से ही विद्यार्थियों को यह सिखाने में लगी है कि वो कंप्यूटर कोड कैसे तैयार करें? कई विद्यालय तो बच्चों को 5-5 भाषाएँ पहली कक्षा से ही सिखाने लग जाते हैं। प्रश्न यह है कि यदि सन् 2050 आते-आते आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस के माध्यम से ऐसा तरीका विकसित हो गया कि कोई कहीं भी, किसी भी भाषा को जान सके, बोल सके या कंप्यूटर की बेसिक जानकारी रखने वाले भी एल्गोरियम तैयार कर सकें तो यह सारी दी गई जानकारी व्यर्थ ही सिद्ध होगी। यह लगभग वैसा ही है, जैसे—मेंढ़क के विषय में 2 साल पढ़ने के बाद भी डॉक्टर बनने पर उस जानकारी का कोई विशेष उपयोग नहीं हो पाता है।

यहाँ इन तथ्यों को लिखने के पीछे का उद्देश्य एक ही है कि शिक्षा-प्रणाली बहुत तेजी से बदलती नजर आती है और जिन स्थानों पर यह बदल नहीं रही है, वहाँ बदलाव की आवश्यकता भी उतनी ही तेजी से प्रतीत हो रही है। इन सारी प्रगतियों के बीच में लगभग हर शिक्षाविद् इस सत्य को अनुभव कर रहा है कि पारंपरिक ढाँचे पर शिक्षा को दे पाना अब संभव नहीं है; क्योंकि चाहे हम कितनी भी जानकारियाँ प्रदान कर दें और चाहे हम कितने भी कौशल के माध्यम विद्यार्थियों को सिखा दें—आने वाला विश्व उससे कुछ भिन्न ही प्रतीत होगा।

ऐसे में आवश्यक यह हो जाता है कि उनको मात्र जानकारियों का पुलिंदा बनाने के स्थान पर अच्छा इनसान बनाने के लिए ही प्रयत्न किया जाए। यदि उन्हें अच्छा इनसान बनाने में हमें सफलता मिल सकी तो फिर उन्हें किसी भी तरह के भविष्य के लिए तैयार किया जा सकता है। संपूर्ण मानवता का भविष्य तैयार करने वाले परमपूज्य गुरुदेव तो इस सत्य से वर्षों पहले ही परिचित थे, इसलिए उन्होंने शांतिकुंज में गायत्री विद्यापीठ के रूप में जिस गुरुकुल की स्थापना की, उसके केंद्र में इसी सोच को रखा गया।

वर्षों पहले उन्होंने कहा—"शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य मात्र उस जानकारी को देना नहीं होना चाहिए, जिसके माध्यम से लोगों को केवल सुखी बनाया जा सके। यदि उन्हें जीवन कला की ही जानकारी न हो तो व्यक्ति सारी जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद भी दीन, दुःखी और पतित जीवन ही जीता देखा जाता है।" परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा—संसार में जितने भी ज्ञान, कला और कौशल हैं, उनमें सर्वोपरि स्थान जीवन कला का है। जिसे यह आती है, उसे हर घड़ी, हर परिस्थिति में केवल आनंद, उल्लास और संतोष का सुख मिलता रहता है। दुःख इस बात का है कि बुद्धिमान समझा जाने वाला मानव प्राणी जीवन-विद्या की उपयोगिता और आवश्यकता को न तो अनुभव कर रहा है और न ही उसके लिए कोई प्रयत्न ही इस दिशा में चल रहे हैं। अनेक विषयों की शिक्षा देने के अनेक विद्यालय मौजूद हैं, पर जीवन जीने की कला सिखाने वाला एक भी विद्यालय कहीं न हो, यह कितने आश्चर्य और खेद का विषय है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर शांतिकुंज में गायत्री विद्यापीठ के रूप में एक अभिनव प्रयोग परमपूज्य गुरुदेव द्वारा किया गया, जहाँ से निकलने वाले विद्यार्थी आज संपूर्ण विश्व में अपनी प्रतिभा की छाप छोड़ते नजर आते हैं। संजीवनी विद्या की शिक्षा देने वाला यह एक अभिनव प्रयोग है, जो करोड़ों गायत्री परिजनों की भावनाओं के सहयोग से चलता है। गायत्री विद्यापीठ की स्थापना के माध्यम से एक ऐसा अप्रतिम उदाहरण परमपूज्य गुरुदेव ने समाज के सम्मुख स्थापित किया है कि जिसके मूल्य व महत्त्व को आने वाली अनेकों सदियों तक मानवता अनुभव करती रहेगी। ❑

मुनि शरलीमा ने घोर तप करके संतान प्राप्त की। अपने एकमात्र पुत्र को उन्होंने अच्छी तरह लिखाया-पढ़ाया। पुत्र भी सुसंस्कारी था और पिता के प्रति अगाध श्रद्धा रखता था। समयानुसार शरलीमा का निधन हो गया। पिता की मृत्यु का पुत्र पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने खाना-पीना छोड़ दिया, बस बैठकर रोता रहता। यह देखकर अग्निदेव वहाँ प्रकट हुए और उससे बोले—"वत्स! जीवन व मरण इस संसार के नियम हैं, जो इनसे अप्रभावित रहता है, वही सच्चा ज्ञानी होता है।" उसको अग्निदेव के वचनों से अत्यधिक शांति मिली। उसने पूछा—"भगवन्! दुःख से निवृत्ति का क्या उपाय है?" अग्निदेव ने उत्तर दिया—"वत्स! आत्मज्ञान ही दुःख से निवृत्ति का एकमात्र उपाय है। तू तप कर। तप से ही बोध होता है और बोध से मुक्ति।" कालांतर में उसने तप करके आत्मज्ञान प्राप्त किया।

मनोनिग्रह कुछ ऐसे साधें

सुखी, सफल एवं संतुष्ट जीवन का आधार ही मनोनिग्रह है। जितना जिसका मन पर निग्रह होगा, उतना ही वह व्यक्ति स्वयं के स्वामी की तरह जीवन जी पाएगा। नियंत्रित मन व्यक्ति के मित्र एवं हितैषी की तरह व्यवहार करता है; जबकि अनियंत्रित मन व्यक्ति का समीपस्थ शत्रु सिद्ध होता है, व्यक्ति को अनुचित मार्ग पर बलात् धकेलता है और तन-मन के स्वास्थ्य संतुलन को चौपट करता हुआ जीवन को दुःख, पीड़ा एवं अशांति की ज्वाला में झोंक देता है। इसके विपरीत मनोनिग्रह व्यक्ति को इस त्रासदी से बचाता है। मन का निग्रह संभव-शक्य हो सके, इसके लिए निम्नांकित कुछ सूत्रों का पालन करें—ये सुखी जीवन के सूत्र हैं।

गहरे राग-द्वेष, पसंद-नापसंद से बचें। किसी विषय के प्रति जितना अधिक राग या आसक्ति रहती है, उतना ही इसके खोने, बिछड़ने या छिन जाने पर द्वेष या पीड़ा का एहसास होता है। ऐसे में मानसिक संतुलन एवं निग्रह कठिन हो जाता है। जितना व्यक्ति राग या आसक्ति से मुक्त होगा, उतना ही उसका मन किसी वस्तु, व्यक्ति, साधन, पद आदि के न रहने पर अप्रभावित रहेगा। इसी कारण शास्त्रों में अत्यधिक राग एवं आसक्ति से बचने की सलाह दी गई है और अनासक्त जीवन को श्रेष्ठ बताया गया है।

असंयमित एवं अनैतिक जीवन से यथासंभव दूर रहें। किसी भी तरह के असंयम इंद्रियों एवं मन को बहिर्मुखी बनाते हैं, जिनमें अत्यधिक लिप्त होने पर व्यक्ति को इनकी लत लग जाती है और ये व्यक्ति की जीवनीशक्ति को निचोड़कर दुर्बल बना देते हैं तथा वह उनका कीतदास बन जाता है। ऐसे में सही-गलत का निर्णय करना कठिन हो जाता है और न चाहते हुए भी व्यक्ति अनैतिक मार्ग पर चल पड़ता है। इसीलिए संयम एवं सदाचार को आध्यात्मिक जीवन का आदर्श माना गया है, जिससे इंद्रियाँ तथा मन व्यक्ति के नियंत्रण में रहते हैं और एक गरिमापूर्ण जीवन जी पाना संभव हो पाता है।

साथ ही एकतरफा एवं असंतुलित जीवन से बाहर निकलें। व्यक्ति की एकतरफी चाल जीवन को असंतुलित बना देती है। ऐसे में व्यक्ति अतिवाद का शिकार हो जाता है। ऐसा सांसारिक सुख-भोग, धन-वैभव, नाम-यश के पीछे हाथ धोकर पड़ने के कारण होता है, जिसमें व्यक्ति का आंतरिक संतुलन डगमगा जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति की मनःस्थिति पर एक तरह का उन्माद-सा सवार रहता है और ये सब व्यक्ति को एक विक्षिप्त मनोदशा की ओर ले जाते हैं, जिस अवस्था में बाहरी उपलब्धियों, वैभव आदि के बावजूद जीवन के सुख-चैन तथा शांति आदि सब नदारद हो जाते हैं और मन का निग्रह एक दूर की कौड़ी सिद्ध होता है।

देह को अनावश्यक पीड़ा व कष्ट देने से बचें। कई लोग साधना या प्रायश्चित के नाम पर शरीर को कष्ट एवं पीड़ा देते हैं। इसको भूखा मारते हैं, इसे कड़ी ठंढ या गरमी में झोंक देते हैं। ऐसी हठयौगिक साधनाओं में शरीर अनावश्यक रूप से कष्ट पाता है और इनसे मन की साधना कितनी हो पाती है, कहना कठिन है। इसके विपरीत ऐसे कार्यों से प्रायः व्यर्थ में ऊर्जा अधिक नष्ट होती है। इसके साथ एकदम मौन या अहंकेंद्रित इक्कड़ जीवन भी मन के निग्रह को कठिन बनाता है। ये सब साधना की प्रारंभिक अवस्था के आवश्यक बाड़े हो सकते हैं, लेकिन वास्तविक मन की साध तो इनके पार निकलने पर ही संभव हो पाती है, जो एक साम्यावस्था और संतुलन भरे कौशल का नाम है।

दोषदर्शन एवं परनिंदा से दूर रहें। जब व्यक्ति स्वयं में व्यस्त व मस्त नहीं रह पाता, तो वह दूसरों में अधिक रुचि लेता है। दूसरों को आगे बढ़ते देख ईर्ष्या-द्वेष से ग्रस्त हो जाता है। उनकी कमियों, गलतियों व दोषों को बढ़-चढ़कर देखने लगता है तथा प्रपंच में अन्यथा ही लिप्त हो जाता है। दूसरों के मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप करने लगता है। इसके साथ व्यक्ति में जान-बूझकर दूसरों को नुकसान पहुँचाने की वृत्ति भी यदि पनपने लगे तो फिर मन का निग्रह दुष्कर हो जाता है और व्यक्ति का जीवन गहरे विषाद एवं नकारात्मकता के भाव से म्लांत हो जाता है।

ये भी ध्यान रखें कि अति महत्त्वाकांक्षा से हमेशा बचें। अपनी क्षमताओं को बिना पहचाने अति महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य का निर्धारण भी व्यक्ति के मन:निग्रह को कठिन बना देता है। ऐसे में व्यक्ति को जो कुछ मिलता है, वह उससे संतुष्ट नहीं हो पाता। हमेशा कुछ अधिक की कामना से वह सदा बेचैन रहता है। वर्तमान को पूरे ढंग से जी भी नहीं पाता। आंतरिक संतुलन के बजाय बाहरी चीजों में उलझ जाता है और अपनी सुध-बुध लेने का समय ही नहीं निकाल पाता। इसके साथ दूसरों के साथ तुलना-कटाक्ष और पर संपत्ति के प्रति लोभ वृत्ति भी उसमें पनप जाती है, जो मन के निग्रह को और कठिन बना देती है। मार्ग की गलतियों का अपराध बोध भी व्यक्ति को भीतर-ही-भीतर सालता रहता है।

इस तरह मन का निग्रह जीवन के प्रति एक गहरी समझ और एक संयमित-संतुलित जीवन की माँग करता है। अपनी दुर्बलताओं को साधते हुए, अपनी क्षमताओं को जगाते हुए तथा अपनी चित्तवृत्तियों को शांत करते हुए धीरे-धीरे इसे अंजाम दिया जाता है, जिसका कोई शॉर्टकट नहीं। इसे तो जीवन के द्वंद्वों के बीच, हर तरह के अनुभवों से गुजरते हुए तप-तितिक्षा से परिपूर्ण जीवन को जी कर ही साधा जाता है। ईश्वरपरायण, सदाचारी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ जीवन जीते हुए जीवन देवता की साधना के साथ मन की चंचलता शांत होती है और यह परम लक्ष्य की प्राप्ति का साधन बनता है। ❑

स्कॉटलैंड का सम्राट ब्रूस अभी गद्दी पर बैठ भी नहीं पाया था कि दुश्मनों ने हमला कर दिया। बड़ी मुश्किल से वह सँभल पाया था कि दोबारा हमला हो गया। वह हारते-हारते बचा। कुछ समय बाद कई राजाओं ने मिलकर हमला कर दिया तो बेचारे की राजगद्दी छिन गई। लगातार चौदह बार मिली असफलताओं के कारण उसके सैनिक भी कहने लगे कि ब्रूस के भाग्य में सब कुछ है, पर विजय नहीं और उन्होंने भी उसका साथ छोड़ दिया।

निराश ब्रूस एक दिन अकेला एक पहाड़ी पर बैठा था। उसने देखा कि पास के पेड़ पर एक मकड़ी बार-बार एक टहनी से दूसरी टहनी पर जाने का प्रयास करती, पर बीच में ही गिर जाती और उसका जाला बन न पाता। मकड़ी ने बीस बार प्रयत्न किया, फिर भी हिम्मत न हारी और अंततः इक्कीसवीं बार में सफल हो गई।

यह देखकर ब्रूस की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और वह बोल पड़ा— "अभी तो सात अवसर और बाकी हैं, फिर हार क्यों मानूँ?" यह कहकर उसने साथी राजाओं व सैनिकों की सेना बनानी शुरू की और एक बार पुनः पूरी शक्ति के साथ आक्रमण किया। युद्ध में उसकी विजय हुई और उसने न केवल अपना खोया राज्य प्राप्त किया, बल्कि वह पूरे स्कॉटलैंड का सम्राट भी बना। असफलता केवल यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयास पूरे मनोयोग के साथ नहीं किया गया था।

संत तुकाराम की ईश्वरभक्ति

भारत की पुण्यभूमि पर निर्गुण-निराकार ब्रह्म समय-समय पर सगुण-साकार रूप में प्रकट होते रहे हैं। भारत की यह पुण्यधरा कभी भगवान राम तो कभी भगवान कृष्ण की अद्भुत व अलौकिक लीलाओं की साक्षी रही है। यह पुण्यधरा युगों-युगों से ऐसे संतों, ऋषियों-मुनियों, योगियों, तपस्वियों की कर्मभूमि व तपोभूमि भी रही है, जिन्होंने विभिन्न योग साधनों के द्वारा सगुण-निर्गुण ब्रह्म की उपासना के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया। उन्होंने अपने अमृत ज्ञान से पूरी मानवता को अभिसिंचित किया, आनंदित किया व आह्लादित किया।

संतों की उसी पावन पुण्यपरंपरा में संत तुकाराम का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। तुकाराम महाराष्ट्र के एक महान संत थे। उनका जन्म देहू नामक ग्राम में भगवद्भक्तों के एक पवित्र कुल में सन् 1608 में हुआ था। इनके माता-पिता का नाम कनकाबाई और बोलोजी था। तुकाराम में बचपन से ही वैराग्य की भावना बलवती थी। माता-पिता तथा बड़े भाई की मृत्यु के बाद इनके दु:ख की कोई सीमा न रही। वहीं आर्थिक तंगी भी चरम पर थी, पर अभावों में भी उनकी उदारता देखते ही बनती थी।

एक बार वे खेत से गन्ने लेकर आ रहे थे। उन्हें गन्ने ले जाते देखकर कुछ बच्चे गन्नों के लिए उनके पीछे पड़ गए। वे प्रसन्नतापूर्वक बच्चों को गन्ने देते गए। अंत में सिर्फ एक गन्ना बचा, जिसे लेकर वे घर आए। उनके हाथ में मात्र एक गन्ना देखकर भूखी पत्नी को बड़ा क्रोध आया। उसने क्रोध में उसी गन्ने को उनकी पीठ पर दे मारा। उस एक गन्ने के दो टुकड़े हो गए। इस पर क्रोध करने के बजाय वे हँस पड़े और बोले—"तुम बहुत साध्वी हो। तुमने बिना कहे ही इस गन्ने के दो टुकड़े कर दिए। लो एक तुम्हारा हुआ और एक मेरा।"

एक बार उनकी पत्नी जिजाई ने बाजार से कुछ खरीद लाने के लिए उन्हें कुछ रुपये दिए, परंतु ज्यों ही वे बाहर निकले कि रास्ते में उन्हें एक दुखियारा मिला। उसे देखते ही उन्हें दया आ गई और उन्होंने सभी रुपये उसे सौंप दिए। उसी बीच वहाँ भयंकर अकाल पड़ा। उस अकाल में उनकी पत्नी व पुत्र भी चल बसे। शायद तुकाराम के वैराग्य को और प्रबल करने के लिए ही प्रभु उनके समक्ष ये सारी विपदाएँ प्रस्तुत कर रहे थे और उन्हें पूरी तरह अपनी शरण में आने को प्रेरित कर रहे थे।

घोर आर्थिक विपदा के साथ-साथ अपने सगे-संबंधियों, स्त्री, पुत्र सबको खो देने के बाद भी तुकाराम भगवद्भक्ति से कभी विचलित नहीं हुए। फिर विपदा में ही तो भक्त की भक्ति की असली परीक्षा होती है। उन सभी विपदाओं को प्रभु की इच्छा मानकर, अपना प्रारब्ध मानकर वे उन्हें सहते हुए अविचलित रहे। हे प्रभु! तेरी जैसी इच्छा। हे प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो—ऐसा कहते हुए वे विपदाओं, कष्टों, झंझावातों से, ममता व आसक्ति के बंधनों से पार होते रहे। ऐसी स्थिति में भी ईश्वर के मार्ग पर चलते रहना, यही तो सच्चे भगवद्भक्त की पहचान है। वह सदैव अपनी इच्छा को नहीं, वरन प्रभु की इच्छा को ही सर्वोपरि मानता है। वह यह मानता है कि ईश्वर सर्वव्यापी है, न्यायकारी है। अस्तु ईश्वर जो भी करता है; उसमें ही भक्त का भला, भक्त का हित, भक्त का कल्याण निहित है।

सो संत तुकाराम अपने जीवन में आई विपदाओं के दावानल से वैराग्य-कंचन होकर ही निकले। अब वे योगक्षेम का सारा भार भगवान के भरोसे छोड़कर भगवद्भजन करने लगे। वे प्राय: या तो कीर्तन में या ध्यान में रहने लगे। उनकी सच्ची भक्ति के कारण प्रभु की प्रेरणा से चैतन्य नाम के एक सिद्ध संत ने तुकाराम को स्वप्न में दर्शन दिए। उन्होंने स्वप्न में ही तुकाराम को 'रामकृष्ण हरि' मंत्र का उपदेश दिया। प्रात:काल नित्य कर्म से निवृत्त होकर वे विट्ठल भगवान के मंदिर में जाते, वहाँ वे उनकी पूजा-पाठ और सेवा किया करते।

वहाँ से फिर वे इंद्रायणी नदी के पार कभी भागनाथ पर्वत तो कभी गोंडा या भाराड़ारा पर्वत पर चढ़कर वहीं एकांत में 'ज्ञानेश्वरी' या 'एकनाथी भागवत' का पारायण करते और फिर दिन भर नामस्मरण करते रहते। संध्या होने

पर वे गाँव लौटते और हरिकीर्तन सुनते, जिसमें लगभग आधी रात बीत जाती। उनके ही पूर्वजों के द्वारा बनवाया गया विट्ठल भगवान का मंदिर बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गया था। उन्होंने उस मंदिर की अपने हाथों से मरम्मत की। तुकाराम ने साधना के दौरान संत ज्ञानेश्वर और नामदेव जैसे पूर्वकालीन संतों के ग्रंथों का बहुत ही गहराई व श्रद्धा से अध्ययन किया था, स्वाध्याय किया था। कठिन साधनाओं के उपरांत अंततः तुकाराम की चित्तवृत्ति भगवन्नाम के स्मरण व ध्यान में लीन होने लगी। उनका चित्त निर्मल हो गया।

जब साधक का चित्त निर्मल हो जाता है तब उस पर भगवान का अनुग्रह, अनुदान-वरदान बरसना भी शुरू हो जाते हैं। भगवान भी उसे अपना यंत्र, उपकरण बना लेते हैं। उसे भगवत्कार्य सौंपने लगते हैं। तुकाराम ने भी अब भगवान के यंत्र, उपकरण बनने की पात्रता प्राप्त कर ली थी। भगवत्कृपा से कीर्तन करते समय उनके मुख से 'अभंग वाणी' (ईश्वर की वाणी) प्रस्फुटित होने लगी। उनके मुख से काव्य रूप में प्रस्फुटित ईश्वरीय ज्ञान को सुनकर बड़े-बड़े विद्वान व साधु-संत उनके चरणों में नतमस्तक होने लगे।

उनकी प्रसिद्धि देखकर कई विद्वान पंडित उनसे ईर्ष्या भी करने लगे। उन्हीं में से एक थे पंडित रामेश्वर भट्ट। तुकाराम जैसे इतर जाति के व्यक्ति के मुख से अभंग निकले और लोग उसे संत मानकर पूजें, यह बात उन्हें जरा भी पसंद न आई। उन्होंने देहू के हाकिम से तुकाराम जी को देहू छोड़कर कहीं चले जाने की आज्ञा दिलाई। इस पर तुकाराम पंडित रामेश्वर भट्ट के पास गए और उनसे बोले—"मेरे मुख से जो ये अभंग निकलते हैं, वो भगवान पांडुरंग की आज्ञा से ही निकलते हैं। आप ब्राह्मण हैं, आपकी आज्ञा है तो मैं अभंग बनाना (ईश्वर पर आधारित कविताएँ रचना) छोड़ दूँगा, पर जो अभंग बन चुके हैं और लिखे रखे हैं, उनका क्या करूँ?" भट्ट जी ने कहा—"उन्हें नदी में डुबो दो।"

पंडित जी की आज्ञा शिरोधार्य कर तुकाराम ने ऐसा ही किया। सारी अभंगें इंद्रायणी की धारा में डुबो दी गईं, पर ऐसा करने से तुकाराम का हृदय बहुत व्यथित हुआ। भगवत्प्रेमोद्गार रूपी अभंगों को डुबोकर वे बहुत व्यथित हुए। उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया। वे विट्ठल भगवान के मंदिर के सामने एक शिला पर बैठ गए, इस प्रण के साथ कि या तो अब भगवान मिलेंगे या इस जीवन का अंत होगा।

इस प्रकार कठोर प्रण के साथ भक्त तुकाराम श्री पांडुरंग (श्री विट्ठल भगवान) के साक्षात् दर्शन की लालसा लिए, एक शिला पर बैठ गए। वे बिना खाए-पिए तेरह दिन और तेरह रात वहीं पड़े रहे। अंततः तुकाराम की सच्ची भक्ति को देखकर भक्तवत्सल भगवान निर्गुण-निराकार ब्रह्म सगुण-साकार रूप में प्रकट हुए। तुकाराम के हृदय में तो वे पूर्व से विराज ही रहे थे, अब वे बाल-वेश धारणकर तुकाराम के समक्ष प्रकट हो गए।

तुकाराम भगवान के चरणों में गिर पड़े। भगवान ने उन्हें दोनों हाथों से उठाकर छाती से लगा लिया। तत्पश्चात भगवान ने कहा—"पुत्र! मैंने तुम्हारे अभंगों की बहियों को नदी की धारा में सुरक्षित रखा था। आज उन्हें तुम्हारे भक्तों को दे आया हूँ।" यह कहकर भगवान फिर अंतर्धान हो गए। प्रभु के साक्षात्कार के बाद तुकाराम का शरीर पंद्रह वर्षों तक इस लोक पर रहा। वे जब तक रहे, उनके मुख से सतत भगवत् अमृतधारा बरसती रही, बहती रही। उस धारा में नहा-नहाकर, उनके उपदेशों को सुन-सुनकर लोग कृतार्थ होने लगे।

वे प्रायः लोगों को सांसारिक माया-मोह से मुक्त होने का उपदेश देते और कहते—"बार-बार तुम क्यों मरना चाहते हो? क्या इससे छूटकर भागने का कोई उपाय तुम्हारे पास नहीं है। अरे भाई! यह शरीर बड़ा अद्भुत है। यह ईश्वर को पाने का साधन है। इस साधन से भला क्या नहीं प्राप्त हो सकेगा? भक्तिपूर्ण भजन से, भगवद्ज्ञान से, भगवान की शरण से हमें साक्षात् भगवत्कृपा प्राप्त हो सकती है। हमें भगवान प्राप्त हो सकते हैं। वे प्रभु हमारे हृदय में आ विराज सकते हैं, फिर उसी से हमारा जीवन धन्य होगा। भगवान का नाम सुमिरन, भजन, ध्यान करने के लिए हमें कोई कौड़ी भी खरच नहीं करनी पड़ती। भगवन्नाम के स्मरण से सांसारिक प्रपंच, सांसारिक बंधनों से, सांसारिक माया-मोह से हमें मुक्ति मिल सकती है। बस, महत्त्वपूर्ण यही है कि हम सच्चे मन से भगवन्नाम का स्मरण, भजन, ध्यान किया करें। एक दिन भगवान की कृपा आप पर भी होगी, वैसे ही, जैसे मुझ दीन पर भी भगवान ने कृपा की।"

संत तुकाराम द्वारा दिखाया गया भगवत्प्राप्ति व माया से मुक्ति का मार्ग हम सबके लिए भी सुलभ है, हम भी इस मार्ग पर चलकर भगवत्कृपा प्राप्त कर सकते हैं। हम स्वयं को माया-मोह व प्रपंचों से मुक्त कर सकते हैं। ❑

पर्व विशेष

मातृ दिवस का सच्चा अर्थ

मातृ दिवस या माताओं का दिन चाहे इसे जिस नाम से पुकारें—यह मातृशक्ति के लिए निर्धारित दिन है। अमेरिका में मातृ दिवस की शुरुआत 20वीं शताब्दी के आरंभ के दौर में हुई। विश्व के विभिन्न भागों में यह दिन अलग-अलग तरीकों से मनाया जाता है। मातृ दिवस का इतिहास करीब 400 वर्ष पुराना है। प्राचीन ग्रीक और रोमन इतिहास में भी मातृ दिवस मनाने का उल्लेख आता है। भारतीय संस्कृति में तो माँ के प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा सदा से ही रही है।

मातृ दिवस के अवसर पर जब भी युवा पीढ़ी बढ़-चढ़कर अपनी भावनाओं को सोशल मीडिया के माध्यम से अभिव्यक्त करती है तो इस बहस का प्रारंभ हो जाता है कि क्या किसी पाश्चात्य अवधारणा को इस तरह जीवन का एक भाग बना लेना उचित है? यह बहस उचित भी है। प्राय: हमें मातृ दिवस का स्मरण बाजार दिलाता है। महिलाओं और विशेषकर वृद्धाओं के लिए उत्पाद बनाने वाली कंपनियों के संदेश हमें यह सूचित करते हैं कि बाजार 'मदर्स-डे' के लिए उत्पादों की नवीन शृंखला के साथ सजकर तैयार है।

मातृ दिवस उत्सव का सूत्रपात करने वाली अमेरिकी महिला एना जार्विस को भी इस व्यवसायीकरण ने आहत किया था। मई, 1905 में दिवंगत हुई अपनी माँ के प्रति अपनी कृतज्ञता और श्रद्धा की अभिव्यक्ति को विराट फलक देते हुए एना जार्विस ने इसे समस्त माताओं के प्रति कृतज्ञताज्ञापन के अवसर में बदल दिया।

'वह प्यारी माँ जो हमें प्रेम सिखाती है'—एना जार्विस के इन शब्दों में मातृशक्ति और प्रेम के उच्चतम स्वरूप को अनुभव किया जा सकता है। जार्विस के प्रयासों से सन् 1908 में सेंट एंड्रूज मेथोडिस्ट चर्च, वेस्ट वर्जीनिया में पहली बार मातृ दिवस का उत्सव मनाया गया। जार्विस के अथक संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि उनके द्वारा प्रारंभ किए गए मातृ दिवस को सन् 1914 में अमेरिकी राष्ट्रपति डब्ल्यू विल्सन ने राष्ट्रीय अवकाश का दरजा दिया।

बाजार ने जार्विस के मदर्स-डे को उनकी आशाओं से अधिक लोकप्रिय बना दिया। लोग फूलों की सजावट, महँगे ग्रीटिंग कार्डों और चॉकलेट्स पर अनाप-शनाप खरच करने लगे। जार्विस को इससे बड़ी पीड़ा हुई और उन्होंने इसका पुरजोर विरोध भी किया। इसी प्रकार जब प्रथम महिला ऐलेनोएर रुजवेल्ट ने मातृ दिवस को महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य तथा कल्याण को समर्पित किया तब भी जार्विस ने इसके राजनीतिकरण की आलोचना की, यद्यपि जार्विस की माता सामुदायिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में ही कार्यरत थीं।

अपनी तमाम व्यावसायिक विकृतियों के बावजूद मातृ दिवस आज की आपा-धापी में आत्मकेंद्रित होती जा रही युवा पीढ़ी को माँ का स्मरण कर उनके प्रति आभार व्यक्त करने का एक अप्रतिम अवसर अवश्य प्रदान करता है। कोमल और पवित्र भावनाओं का स्फुरण महत्त्वपूर्ण है, भले ही उसके लिए उद्दीपन आधुनिक तकनीकी के माध्यम से बाजार द्वारा ही क्यों न दिया गया हो।

इस अवसर पर हम वर्तमान समय में परिवार की शक्ति के ह्रास, वृद्धों की उपेक्षा और वृद्धाश्रमों में एकाकी जीवन बिताने की उनकी त्रासदी पर चर्चा कर सकते हैं और साथ ही हमारे देश की संयुक्त परिवार की प्रथा का गौरवगान भी कर सकते हैं। यह एक कटु सत्य है वैश्वीकृत मुक्त अर्थव्यवस्था के इस युग में विकास के जिस प्रारूप को सर्वस्वीकृत और अपरिहार्य मान लिया गया है, उसमें तकनीकी क्रांति द्वारा भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति का लक्ष्य सर्वोपरि है। मनुष्यों के बीच भावनात्मक संबंधों का ह्रास, निजी संपर्क में कमी और सामुदायिकता की भावना का क्षरण—विकास के इस प्रारूप के अनिवार्य एवं दूषित प्रभाव हैं। हम इनसे अछूते नहीं रह सकते।

मातृत्व प्रकृति द्वारा नारी को दिया गया एक अनुपम और अद्वितीय उपहार है, जो उसे सृजेता का अधिकार प्रदान करता है तथा पुरुष से भिन्न एवं श्रेष्ठ बनाता है, किंतु कुछ लोगों की संकीर्ण सोच पुरुष वर्चस्व की स्थापना के लिए मातृत्व का नारी के सम्मान में बाधा उत्पन्न करने हेतु दुरुपयोग करती रही है। पुरुषवादी समाज में नारी की

भूमिका को मातृत्व के बहाने घर और परिवार तक सीमित करने का कुटिल प्रयास हमेशा होता रहा है।

विश्व के अधिकांश धर्म वैचारिक और सैद्धांतिक स्तर पर माता के रूप में नारी को आदर और श्रद्धा का पात्र मानते हैं, किंतु इन धर्मों के संस्थागत, व्यावहारिक स्वरूप में माता को वह स्वतंत्रता, सम्मान और समानाधिकार प्राप्त नहीं हैं। संकीर्णवादी सोच में माता तभी तक आदरणीया है, जब तक वह पितृसत्ता के निर्देशों पर चलकर स्वयं को घर की चहारदीवारी के भीतर ही आबद्ध रखे। उसे दिए जाने वाले सम्मान के पीछे निषेध और वर्जनाओं का एक पूरा तंत्र छिपा होता है।

इस पुरुषवादी वर्चस्व की प्रतिक्रिया में पश्चिम का नारीवादी आंदोलन एकदूसरे ही अतिरेक की ओर जाता दिखता है, जब वह मातृत्व को त्यागने और नकारने का भाव नारी में उत्पन्न करता है। यह सोच भी नारी के सम्मान पर चोट के समान ही है। दूसरी ओर पुरुषवादी सोच संतान के लालन-पालन का संपूर्ण उत्तरदायित्व माता पर डालती है। इस महती दायित्व का निर्वाह करने वाली माताओं को धन्यवाद देने के स्थान पर उनकी आलोचना करना—इस सोच में सम्मिलित भाव है।

अशोका विश्वविद्यालय का एक अध्ययन यह बताता है कि देश में 73 प्रतिशत महिलाएँ पहली बार माँ बनने पर अपनी नौकरी छोड़ने के लिए बाध्य हो जाती हैं। 30 वर्ष की आयु की 50 प्रतिशत माताएँ अपने बच्चों की देख-रेख के लिए नौकरी त्याग देती हैं। इनमें से केवल 27 प्रतिशत काम पर वापस लौट पाती हैं, किंतु इनमें से भी 48 प्रतिशत को पुनः काम छोड़ना पड़ता है।

यह चिंताजनक स्थिति यह बताती है कि मातृत्व किस प्रकार नारी से उसकी आर्थिक स्वतंत्रता छीनकर उसे पुरुष पर आश्रित बना देता है। विश्व बैंक का सन् 2018-2019 का एक अध्ययन यह बताता है कि भारत में 15 वर्ष से अधिक आयु की केवल 27 प्रतिशत महिलाएँ ही नौकरीपेशा हैं, जो ब्रिक्स देशों में न्यूनतम है।

मातृ दिवस के अवसर पर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा माताओं के स्वास्थ्य के विषय में नवीनतम आँकड़ों की चर्चा भी आवश्यक है। आसानी से दूर की जा सकने वाली स्वास्थ्य समस्याओं का समाधान न हो पाने के कारण विश्व में प्रतिदिन गर्भावस्था और प्रसव के दौरान 810 महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। मातृत्व से जुड़ी हुई 94 प्रतिशत मौतें अविकसित एवं विकासशील देशों में होती हैं। संसाधनविहीन इलाकों में रहने वाली निर्धन महिलाओं में मातृत्व के दौरान मृत्यु दर सर्वाधिक होती है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) के आँकड़ों का एक विश्लेषण यह दरसाता है कि सरकारी स्वास्थ्य कार्यक्रमों के तहत प्रसव पूर्व देख-भाल हेतु बल दिए जाने के बावजूद भारत की स्थिति आदर्श नहीं है। विश्लेषण में पाया गया है कि वंचित समुदायों, विशेष रूप से अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित महिलाओं को प्रसव पूर्व देख-भाल बहुत अच्छे से नहीं मिल पाती है। आँकड़े यह भी बताते हैं कि भारत में गर्भधारण करने की आयु में प्रवेश कर चुकी 53.1 प्रतिशत महिलाएँ रक्ताल्पता से पीड़ित रहती हैं। इंडिया स्पेंड की एक रिपोर्ट बताती है कि भारत में मातृ मृत्यु दर का सबसे बड़ा कारण एनीमिया ही है। माताओं की इन समस्याओं का समुचित निराकरण करना और उनके विकास के लिए कटिबद्ध रहना भी मातृ दिवस के उत्सव की सार्थकता को सिद्ध कर सकता है। ❑

दयालुश्यदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः।
एतेश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिद्यर्यिते मही॥

अर्थात उनका स्वभाव उत्तम माना जाता है, जो सहिष्णु होते हैं और स्वयं कष्ट लेकर दूसरे का दुःख दूर करते हैं। दयालुता, अभिमानशून्यता, परोपकारिता और जितेंद्रिय होना—ये वे चार स्तंभ हैं, जिनके आधार पर यह धरती टिकी हुई है।

शांत मन में बसता है ध्यान

ध्यान अर्थात स्थिरता, एकाग्रता, तन्मयता। धारणा के प्रवाह में जब मन लय होने लगता है और मन जब उसी ओर बहने लगता है, उसमें लीन होने लगता है तब उसे ध्यान कहते हैं। पतंजलि कहते हैं—**तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्** अर्थात जो हमने धारणा की उसके साथ मन का तादात्म्य होने लगे, उसमें मन तदाकार होने लगे तो समझो ध्यान होने लगा। प्राय: मन एक विषय पर टिकता नहीं है। उसका स्वभाव टिकना नहीं है। वह चंचल रहता है। एक क्षण के लिए भी वह कहीं नहीं रुकता है। कभी कोई विचार मन में आता है तो कभी कोई। कभी कोई भाव पैदा होता है तो कभी कोई यादें घेर लेती हैं।

विचार, वृत्ति और स्मृति—इनकी लहरें मन के सरोवर में पैदा होती रहती हैं और ये लहरें हैं कि थमने का नाम ही नहीं लेतीं। हम जब तक सो नहीं जाते, तब तक कुछ-न-कुछ सोचते ही रहते हैं। सुबह उठने के बाद से लेकर रात में सो जाने से पहले तक यदि हम अपना मन देखें यानी मन का खेल देखें तो हम क्या करते रहते हैं? कुछ-न-कुछ सोचते रहते हैं। मन में, दिमाग में कुछ-न-कुछ चलता ही रहता है और जो हम सोचते रहते हैं, उस सोचने में भी विविध रूप होते हैं।

कभी हमारे मन में कोई विचार आता है तो कभी कोई और। कभी मन में कोई कल्पना जन्म लेती है तो कभी कोई चाहत। कभी कोई भाव पैदा होता है तो कभी किसी की याद आती है। मतलब अनेक तरह के विचार एवं भाव—ये पैदा होते ही रहते हैं, थमते नहीं हैं। सो जाने के पश्चात ये रुक जाते हैं, ऐसा भी हम निश्चित रूप से कह नहीं सकते हैं।

ऐसा इसलिए नहीं कह सकते; क्योंकि यदि सो जाने के बाद ये थम जाते तो सपने क्यों आते? कुछ-न-कुछ दिमाग में, मन में चलता रहता है तो सपने भी आते रहते हैं और यह स्थिति आज से नहीं है, बल्कि जब से हमने होश सँभाला है, जब से जिंदगी जीना शुरू किया है तब से है।

बच्चे तो कई बार सपना देखते हैं और सपने को सच भी मान लेते हैं, जैसे उन्होंने सपने में खिलौने अपने लिए बटोरे। जो हमारी चाहत होती है, उसी के इर्द-गिर्द हमें सपने आते हैं, इसलिए बच्चे जगने के बाद खिलौने ढूँढ़ते हैं कि कहाँ गए खिलौने? अभी तो यहीं रखे थे। उनको मालूम ही नहीं कि वो सपना देख रहे थे, जो कि वास्तविकता नहीं थी। इस तरह हमारा मन आसानी से कहीं टिकता नहीं है। कहीं ठहरता नहीं है। हम सोचते हैं कि मन को ठहराएँ।

जब ध्यान करने बैठते हैं तो मन में बड़ी खींच-तान होती है। अनेक दिशाओं से मन खींचा जाता है और कई बार हमारा ध्यान इस वजह से थकान में बदल जाता है। हम थक जाते हैं; क्योंकि सामान्य दशा में, सामान्य भाव में हम मन के साथ खींच-तान नहीं करते हैं। मन जो करना चाहता है उसे करने देते हैं, लेकिन ध्यान जब हम करते हैं तो हम सोचते हैं कि ध्यान हमें लगाना चाहिए। इसमें हमारी एकाग्रता होनी चाहिए। उस विषय पर हमें फोकस्ड होना चाहिए और इसलिए हम बड़ी खींच-तान करते हैं और इस तरह ध्यान हमारे लिए विश्राम नहीं, बल्कि थकान बन जाता है।

हम कह सकते हैं कि ध्यान का तो नहीं मालूम, लेकिन थोड़ी देर के लिए हमें गहरी नींद आ जाए तो विश्राम अवश्य मिल जाता है। हमें ताजगी मिलती है, स्फूर्ति मिलती है, लेकिन ध्यान में ऐसा नहीं मिल पाता है; क्योंकि ध्यान में मन को एकाग्र करने की कोशिश में हम थक जाते हैं। ध्यान में कहते हैं कि बड़ा आनंद आता है, लेकिन इस भाग-दौड़ में, इस थकान में आनंद कैसा? क्योंकि ऐसे ध्यान को करने में हम मन को एकाग्र करने की कोशिश में ही लगे रहते हैं।

सच बात यह है कि ध्यान ही एक ऐसी प्रक्रिया है, एक ऐसी विधि है, जो बिना किसी कोशिश के पूरी होती है। जहाँ कोशिश नहीं, जहाँ कोई श्रम नहीं, केवल विश्राम है व जिसमें कुछ नहीं करना है, जैसे हम आसन करने का अभ्यास करते हैं और इस अभ्यास क्रम में जब हम शवासन

करते हैं तो हम क्या करते हैं, कुछ करते ही नहीं हैं। लेट जाते हैं शिथिल हो करके, शांत।

जब मन शांत होता है तो वह ध्यान में प्रवेश करता है। सामान्य तौर पर हम तन से तो शांत हो जाते हैं, लेकिन मन से कोशिश करते रहते हैं तो विश्राम कहाँ से हुआ? ध्यान वो पल है, ध्यान वो क्षण है; जिसमें हमें कुछ भी नहीं करना है। तन से तो नहीं ही, मन से भी नहीं। इसमें कोई कोशिश नहीं करनी है। बस, भाव की गहराई में समा जाना है, डुबकी लगा लेनी है; इसलिए ध्यान को हम मन का स्नान भी कह सकते हैं।

ध्यान मन के सरोवर में डुबकी लगा लेना है, डूब जाना है। अगर ध्यान हम करने लगें और ध्यान हमारा लगने लगे तो हमें विश्राम मिलेगा। इससे हमारे शरीर और मन को एक नया जीवन, एक नया उत्साह, एक नई उमंग, नई स्फूर्ति, नई शक्ति, नई ऊर्जा प्राप्त होगी; क्योंकि सारे दिन की उथल-पुथल में हम अपनी ऊर्जा गँवा देते हैं और ध्यान करने से हम पुनः अपनी गँवाई हुई ऊर्जा को प्राप्त करते हैं और उसका संग्रह कर पाते हैं।

हमको नींद की आवश्यकता क्यों है? सच पूछो तो नींद सामान्य जनों का ध्यान ही है। जब हम शरीर और मन को शिथिल कर देते हैं, छोड़ देते हैं और सो जाते हैं तो मन सहज रूप से ध्यान की अवस्था में चला जाता है। चूँकि सोते समय हम अचेतन में प्रवेश कर जाते हैं, हम जाग्रत नहीं रहते हैं, इसलिए इस ध्यान में प्रवेश का हमें एहसास नहीं होता; लेकिन ताजगी, स्फूर्ति व शांति के रूप में इसका प्रतिफल हमें मिलता है। आजकल की स्थिति यह है कि सामान्य जनों को इस सहज ध्यान का लाभ भी नहीं मिल पा रहा है; क्योंकि नींद भी आजकल मुश्किल हो गई है। मुश्किल इसलिए हो गई है; क्योंकि लोगों को नींद न आने की शिकायत हो गई है।

नींद नहीं आती है; क्योंकि उन्हें चिंताएँ घेरे रहती हैं और मजे की बात है कि नींद भी आजकल थकान में बदल गई है। वहाँ पर भी वही खींच-तान चलती रहती है। सवेरे ये करना है, शाम को ये करना है, दिन भर ये विचार घेरे रहते हैं और सच यह है कि ये विचार हमें बहुत थकाते हैं।

आप देखिए जिनको डिप्रेशन होता है, उनका मन शांत नहीं होता। उनको भी विचारों के झोंके आते हैं। कई बार कभी-कभार आते हैं तो कई बार यों ही आ जाते हैं। कभी-कभार का मतलब है कि विचारों का एक झोंका कभी सवेरे आया तो कभी एक झोंका दोपहर में और फिर कभी शाम को।

किसी-किसी को मौसम के अनुरूप डिप्रेशन होता है। अब सरदी जाने वाली है या गरमी आने वाली है तो डिप्रेशन हो गया। सरदी आने वाली है तो डिप्रेशन। अनेक विचित्र प्रकार के डिप्रेशन देखने को मिलते हैं और सबका कारण यह है कि हम विचारों से घिरे रहते हैं और इनकी उधेड़बुन में लगे रहते हैं। हमें चिंताएँ घेरे रहती हैं।

इस तरह मनोभाव ही हमारे लिए कई बार मनोरोग बन जाते हैं। हमारी असुरक्षा, हमारी अनिश्चितता, हमारा भय और हमारी चिंताएँ—ये हमारे मन पर बोझ बने होते हैं। इन सब से मुक्त होकर शांत मन में प्रवेश करना ही ध्यान के सरोवर में स्नान है और इस शांत मन में हम कितनी देर ठहरते हैं, उतनी ही देर हमारा ध्यान होता है। इसी ध्यान की प्राप्ति का अभ्यास हमें करना चाहिए। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

ऐसे होती है परमानंद की अनुभूति

संत विष्णुदास फल्गु नदी के तट पर स्थित अपनी कुटिया में वर्षों से रह रहे थे। वे हमेशा ध्यान, तप-साधना में निरत रहते थे। वे सदा भगवान विष्णु का ध्यान किया करते थे, इसलिए वे संत विष्णुदास के नाम से जाने जाते थे। एक दिन संत विष्णुदास जी फल्गु नदी में स्नान कर सूर्य भगवान को अर्घ प्रदान कर रहे थे कि तभी उन्हें किसी बच्चे के रोने की करुण पुकार सुनाई पड़ी। वे नदी से बाहर निकले तो उन्होंने देखा कि किसी ने नूतन वस्त्रों में एक नन्हे से शिशु को नदी किनारे बिलखते छोड़ दिया है।

उस बालक के करुण क्रंदन को सुनकर संत विष्णुदास जी द्रवित हो उठे। उन्होंने उस बालक को गोद में उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और अपनी कुटिया पर ले आए। वे उस शिशु का पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने उस बालक का नामकरण किया और उसका नाम रखा मनोहरदास। बालक के मधुर, मनोहर रूप को देखकर ही उन्होंने उस बालक को वह नाम दिया। समय के साथ-साथ मनोहरदास बड़े होने लगे। पास के एक विद्यालय से उनकी शिक्षा पूर्ण हुई। अब संत विष्णुदास वृद्ध हो चले थे। इसलिए उनके आश्रम की सारी व्यवस्था मनोहरदास के ही जिम्मे थी।

संत विष्णुदास से साधु, संत, गृहस्थ, तपस्वी सभी मिलने आया करते थे। वे परस्पर आध्यात्मिक चर्चा किया करते थे। अस्तु मनोहरदास जी को भगवच्चर्चा सुनने का सौभाग्य प्राप्त होने लगा। मनोहरदास जी का पालन-पोषण एक सिद्ध संत के द्वारा हुआ था और उनके सान्निध्य में वे वर्षों से रह रहे थे; अतः उनकी नैसर्गिक अभिरुचि इन्हीं विषयों में थी।

संत विष्णुदास जी ने मनोहरदास को वैष्णव मंत्र की दीक्षा दी थी। वे वैष्णव मंत्र एवं गायत्री मंत्र के साथ नित्य त्रिकाल संध्यावंदन किया करते थे। नित्य अग्निहोत्र व शास्त्रों का स्वाध्याय किया करते थे। वे सात्त्विक आहार ही लेते थे। संत विष्णुदास एवं उनके संपर्क में आने वाले साधु-संतों के सत्संग से मनोहरदास जी के कषाय-कल्मष दूर हो चुके थे और उनका चित्त शुद्ध हो गया था।

आश्रम में आकर संत गण परस्पर ईश्वर संबंधी जो चर्चा करते थे, उसे सुन-सुनकर भगवान में व भगवान की कथाओं में उनकी रुचि शनैः-शनैः बढ़ने लगी थी। भगवान के प्रति उनकी प्रीति दिन-दूनी एवं रात-चौगुनी बढ़ने लगी थी। भगवान को पाने की उनकी व्यग्रता बढ़ने लगी। अपने शिष्य की आध्यात्मिक प्रगति को देखकर संत विष्णुदास जी बड़े हर्षित हो उठते और कहते—"पुत्र मनोहर! यदि भगवान के प्रति तुम्हारी प्रीति ऐसे ही बढ़ती रही तो एक दिन तुम्हें निश्चित ही भगवान के दर्शन होंगे। पुत्र! भगवान हर जगह व्याप्त हैं। भगवान हर जीव के अंदर हैं। उन्हें महसूस करने के लिए चित्तशुद्धि जरूरी होती है। उसे वासनाओं, कर्म संस्कारों व इच्छाओं के मल से मुक्त करना होता है। उसे विमल, निर्मल व अमल बनाना होता है, करना होता है।"

संत विष्णुदास जी उन्हें बताते—"जब साधक नित्य भगवत्प्रीति व सत्संग से अपने चित्त को निर्मल बना लेता है तब उसकी आत्मा में ही परमात्मा प्रकट हो जाते हैं और आत्मा में परमात्मा के प्रकट होते ही साधक को सत्-चित्-आनंदस्वरूप भगवान के होने की अनुभूति होने लगती है; क्योंकि भगवान का विग्रह सत्-चित्-आनंदस्वरूप अर्थात सच्चिदानंदमय होता है।"

संत विष्णुदास जी ने उन्हें स्पष्ट किया—सत्, चित् और आनंद—ये तीन शब्द हैं। 'सत्' का अर्थ है जो सदा से था, सदा है और सदा ही रहेगा। 'चित्' माने चेतनस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और जो सर्वज्ञ है। और 'आनंद' अर्थात जहाँ आनंद-ही-आनंद है, अविनाशी सुख है। भगवान जब भी भक्त के हृदय में, भक्त की आत्मा में प्रकट होते हैं, तब वे सत्-चित्-आनंद रूप में ही प्रकट होते हैं। तब साधक की सहज ही सत् में अर्थात जो नित्य है, सनातन है, शाश्वत है अर्थात जो सदा से था, सदा से है और सदा ही रहेगा—उस परमात्मतत्त्व में स्थिति हो जाती है।"

संत मनोहरदास जी को अनुभव हुआ कि ऐसे में साधक सत् में स्थित हो जाता है। वह सत्स्वरूप ईश्वर में

स्थित हो जाता है। तब वह अनित्य में, असत् में स्थित नहीं हो सकता। सदा सत् में स्थित होने के कारण उसकी प्रकृति स्वभावतः ही शिवमय अर्थात कल्याणकारी हो जाती है। जैसा कि कहा गया है सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् अर्थात जो सत्य है, वही शिव है; कल्याणकारी है, वही शुभ है और जो शुभ है, जो कल्याणकारी है, वही सुंदर है।

भगवान के 'सत्' स्वरूप की अनुभूति व उस अनुभूति में सदैव के लिए स्थिति हो जाने से साधक को स्वभावतः ही सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अनुभूति होने लगती है। वह 'चित्' अर्थात चेतनस्वरूप हो जाता है; ज्ञानस्वरूप हो जाता है। उसकी आत्मचेतना में परमात्मचेतना के प्रकट हो जाने से वह चैतन्य हो उठता है। उसे नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य, शुभ-अशुभ का बोध हो जाता है।

भगवान आनंद के आदि एवं शाश्वत स्रोत हैं। अतः आनंद के आदि स्रोत, शाश्वत स्रोत से जुड़ते ही साधक को शाश्वत सुख प्राप्त होने लगता है। उसे परम आनंद की अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार हृदय में सत्-चित्-आनंदस्वरूप ईश्वर के प्रकट होने से साधक सदा सच्चिदानंद की अनुभूति करता रहता है।

संत विष्णुदास जी उनके अनुभव को समझते हुए बोले—"पुत्र मनोहर! ईश्वर प्रत्येक चैतन्य के भीतर विराजमान है, पर वह प्रसुप्त है। अस्तु उस प्रसुप्त शक्ति को ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय आदि के माध्यम से जगाना भर है। उस प्रसुप्त शक्ति के जागते ही साधक अपने भीतर ही सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनंदस्वरूप ईश्वर की अनुभूति करने लगता है।"

मनोहरदास जी हमेशा अपने गुरु के द्वारा प्रदत्त इस अमृतज्ञान का स्मरण किया करते, ध्यान किया करते व तदनुसार जीवनयापन करते। संत विष्णुदास जी के महाप्रयाण के बाद मनोहरदास जी अपने गुरु के निर्देशानुसार नित्य संध्यावंदन करते हुए भगवान विष्णु के परम मनोहर रूप का ध्यान किया करते। वे ध्यान में शरद पूर्णिमा के निर्मल, शीतल अमृत की वर्षा करने वाले अगणित चंद्रमा भी जिनकी अंगकांति के सामने फीके हो जाते हैं, ऐसे नीलमणि आभा के समान सुंदर, पीतांबरधारी, चक्र, पद्म, शंखधारी भगवान श्रीविष्णु के सत्-चित्-आनंदस्वरूप का दर्शन वो करते।

इस प्रकार भगवान के इस मनोहरस्वरूप का ध्यान करते-करते मनोहर दास जी नित्य समाधि में निमग्न हो जाते। वर्षों के ध्यानाभ्यास के पश्चात एक दिन सचमुच उन्हें अपनी अंतरात्मा में भगवान के उस दिव्यस्वरूप की अनुभूति हुई। उस दिन की अनुभूति के बाद से तो उन्हें सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, हँसते-गाते, हर पल उसी परम आनंद की अनुभूति हुआ करती थी।

जब वे उन परम पावन प्रभु के गुणों का संकीर्तन करते, तब उन्हें ऐसा लगता मानो वे प्रभु उनके हृदय कमल में अविलंब प्रकट हो जाते। इस प्रकार ईश्वर की अनुभूति का लाभ कर लेने के बाद मनोहरदास जी भी जीवन-मरण के बंधन से स्वयं को सदा-सदा के लिए मुक्त कर गए और साधकों, भक्तों को भी मुक्ति का एवं ईश्वरानुभूति का मार्ग दिखा गए; परमानंद की अनुभूति का मार्ग दिखा गए। सचमुच यदि साधक की, भक्त की साधना सच्ची दिशा में हो, साधना में तन्मयता हो, नियमितता हो, तो उसे निश्चित ही ईश्वर की अनुभूति होती है, परमानंद की अनुभूति होती है। ❑

आद्यन्तमंगलजातसमानभाव—मार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम्।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं संभावये मनसि शंकरमम्बिकेशम्॥

अर्थात जो आदि, मध्य तथा अंत में मंगलरूप हैं, जिनकी कोई तुलना संभव नहीं है, जो आत्मा के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले परमात्मा हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-खेल में ही सृष्टि के पाँचों प्रबल कर्म करने में सक्षम हैं, उन अजर-अमर भगवान शंकर को मैं नमन करता हूँ।

कड़ी मेहनत से मिलती है सफलता

जीवन में हर व्यक्ति सफलता प्राप्त करना चाहता है, लेकिन सफलता उसी को मिलती है; जो इसके लिए पूरी लगन व कौशल के साथ भरपूर मेहनत करता है। सफलता प्राप्ति के लिए केवल कड़ी मेहनत करना ही पर्याप्त नहीं होता। इसके लिए लगन और कौशल भी चाहिए। लगन ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति का ध्यान अपने लक्ष्य से कभी भी ओझल न हो। कौशल का संपुट कार्य की खूबसूरती व अभिव्यक्ति को निखारने के लिए आवश्यक होता है। इसके अलावा कड़ी मेहनत ही व्यक्ति के लिए वह मार्ग बनाती है, जिस पर चलकर व्यक्ति सफलता तक पहुँचता है।

इस तरह लगन, कौशल व कड़ी मेहनत तीनों के द्वारा ही व्यक्ति अपनी सफलता की राह में आगे बढ़ पाता है। जो व्यक्ति इन तीनों में से किसी एक को अपनाकर सफलता प्राप्ति का प्रयास करते हैं, उन्हें अधूरी सफलता ही हाथ लगती है। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति के पास लगन है तो वह कार्य करता रहता है व कार्य करने में पूरी तरह से जुटा रहता है, लेकिन उसके लिए कड़ी मेहनत नहीं करता। कुशलता की भी उसमें कमी है तो कार्य में सफलता भी उसे पूरी तरह नहीं मिल पाती।

यदि व्यक्ति के अंदर किसी भी कार्य को करने का कौशल है और उसे यह पता है कि कार्य को अच्छी तरह से कैसे करना है, लेकिन उसके अंदर न तो कार्य के प्रति लगन है और न ही वह इसके लिए कड़ी मेहनत करता है तो ऐसे व्यक्ति को भी सफलता नहीं मिल पाएगी।

इसके अलावा यदि व्यक्ति बहुत कड़ी मेहनत करता है, लेकिन उसके पास लगन व कौशल की कमी है तो वह अपने कार्य को लंबे समय तक नहीं कर पाएगा। लगन न होने के साथ वह पूरे मन से कार्य नहीं कर पाएगा और बस, आधे-अधूरे मन से मेहनत करेगा। अत: उसे भी अपने कार्य में पूरी तरह सफलता नहीं मिल पाएगी।

कभी-कभी सफलता प्राप्ति के लिए कड़ी मेहनत करने की भी जरूरत नहीं होती। कड़ी मेहनत करने की जरूरत उन्हें होती है, जिनके लिए सफलता प्राप्ति का कार्यक्षेत्र नया है। जो अपने कार्य से पहले से परिचित हैं। उसमें कुशलता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हें केवल ध्यान के साथ मेहनत करने की जरूरत होती है, कड़ी मेहनत करने की जरूरत नहीं।

हम यदि किसी कार्य को करने में कड़ी मेहनत करें, परंतु वह मेहनत सही दिशा में न हो तो उस मेहनत का कोई अर्थ नहीं रह जाता। उदाहरण के लिए यदि हमें पानी निकालने हेतु कुआँ खोदना है तो हमें एक ही स्थान पर गहराई में कुआँ खोदना होगा। इसमें कुआँ खोदना कड़ी मेहनत का काम है, लेकिन यदि किसी व्यक्ति को इस बात का पता नहीं है और उसे बस यह पता है कि पानी निकालने के लिए उसे मिट्टी खोदना है और वह जमीन को गहराई में खोदने के बजाय उसकी लंबाई में मिट्टी खोदता चला जाए तो उससे कुआँ नहीं खुदेगा, बल्कि ऐसा करने से नाली जरूर खुद जाएगी, इसलिए सफलता के लिए की गई मेहनत सही दिशा में होनी चाहिए; अन्यथा हमें इसके सुपरिणाम नहीं मिलते।

कई बार लोग जब सफलता प्राप्ति के लिए किसी कार्य को करते हैं तो इस बात की चिंता भी करते रहते हैं कि उन्हें अपने कार्य में सफलता मिलेगी भी या नहीं। सफलताप्राप्ति की यह चिंता तब और भी बढ़ जाती है, जब कोई खेल खेला जाता है। प्रतिपक्ष में कोई और होता है या टीम होती है। फिर उस खेल में हार या जीत का प्रश्न होता है। लाखों लोगों की नजरें उस खेल के प्रति होती हैं। हर कोई जीत के लिए ही खेलता है, लेकिन खेल में जीत किसी एक टीम को या किसी एक व्यक्ति को ही मिलती है।

खेल खेलते समय यदि किसी का ध्यान केवल सफलता की ओर होता है तो वह एक तरह से मन में तनाव रखकर खेलता है और ऐसी स्थिति में वह न तो खेल का आनंद ले पाता है और न ही अपनी जीत की दिशा में सही प्रयास कर पाता है; क्योंकि खेल का आनंद लेते हुए कुशलता के साथ

खेलने वालों की ही खेल में जीत होती है। इसलिए सफलता के बारे में चिंता करना छोड़कर मन को शांत रखना जरूरी है। इस शांत मन में ही शरीर अपनी पूरी क्षमता के साथ कार्य करता है।

अक्सर देखा यह जाता है कि लोग प्राय: कार्य के दौरान अपने मन से अस्थिर व चंचल रहते हैं। ऐसे में शरीर पूरी एकाग्रता के साथ कार्य नहीं कर पाता और परिणाम यह होता है कि व्यक्ति पूरी तरह से अपने कार्य में सफल नहीं हो पाता। जीत या सफलता पर व्यक्ति का ध्यान लगातार बना रहने पर उसके मन पर एक दबाव-सा बना रहता है।

उसके मन में यह द्वंद्व रहता है कि उसकी मेहनत रंग लाएगी या नहीं। वह सफल होगा कि नहीं। वह जीतेगा या नहीं। इस तरह मन में दबाव रखकर कार्य करने या खेल खेलने से व्यक्ति उन्मुक्त होकर अपनी कार्यकुशलता का प्रदर्शन नहीं कर पाता। फलत: उसे असफलता या हार का सामना करना पड़ता है।

विद्यार्थीगण प्राय: परीक्षा के समय तनाव में आते हैं; क्योंकि उनकी परीक्षा ही यह निर्धारित करती है कि उनके द्वारा साल भर की गई पढ़ाई में वो सफल हुए हैं या असफल और इसलिए उनकी चिंता परीक्षा व परीक्षा के परिणाम के समय बढ़ जाती है। विद्यार्थियों को तो साल भर पढ़ने के बाद या सत्रांत परीक्षाओं में छह महीने पढ़ने के बाद परीक्षा देनी होती है और उसमें सफल होने की प्रतीक्षा करनी होती है, लेकिन जो लोग मैच खेलते हैं और उस खेल में बड़ा पुरस्कार मिलने वाला होता है तो पुरस्कार जीतने के लिए खेलने वाली टीम में और टीम लीडर के मन में तनाव व दबाव होता है। खेल खेलने वाली टीम के लोग खेल को मात्र आनंद के लिए नहीं खेलते, बल्कि पुरस्कार जीतने के लिए भी खेलते हैं।

यदि जीत जाते हैं तो पुरस्कार मिलने के कारण खुश होते हैं और यदि हार जाते हैं तो पुरस्कार न मिलने के कारण दु:खी होते हैं और यह सोचकर भी दु:खी होते हैं कि खेल के दौरान उनके द्वारा की गई मेहनत व्यर्थ चली गई, लेकिन गौर से देखा जाए तो व्यक्ति द्वारा की गई मेहनत कभी व्यर्थ नहीं जाती, बल्कि उसे कुछ-न-कुछ सिखाकर ही जाती है। उसकी कमियों व गलतियों को भी उजागर करती है, जिन्हें यदि दूर किया जा सके तो सफलता मिलना संभव है।

अत: सफलता के लिए यह जरूरी है कि व्यक्ति अपने मन को एकाग्र कर उसे शांत करके परिणाम की चिंता किए बगैर अपनी कमियों व गलतियों को दूर करते हुए पूरी लगन व कुशलता के साथ कार्य करे तो ऐसे में सफलता अवश्य मिलती है। ❑

गायत्री की उच्चस्तरीय साधना में अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनंदमय कोश के जागरण-अनावरण की विधि-व्यवस्था है। इसका कर्मकांड और विधि-विधान समयानुसार गुरुदेव स्वयं ही बताएँगे, पर उनकी अतिनिकटवर्ती सहचरी होने के कारण मैं इतना ही कह सकती हूँ कि अपनी पाँचों इंद्रियों और पाँचों मन:संस्थानों का परिष्कार करने में उन्होंने अथक परिश्रम किया था और निरंतर यह प्रयत्न किया था कि दसों देवताओं को विनाश के मार्ग पर एक इन्च भी नहीं गिरने दिया जाए, वरन उन्हें पवित्रता और प्रखरता के पथ पर ही अग्रसर रखा जाए। इस प्रकार अंतरंग की देवशक्तियों को परिमार्जित कर उन्होंने देवता, मंत्र और गुरु का अनुग्रह प्राप्त किया और उन पाँच शक्तिकोशों को जाग्रत करने में सफल हो गए, जिन्हें अनेक अद्भुत ऋद्धि-सिद्धियों का केंद्र माना जाता है।

—परम वंदनीया माताजी

आवश्यक है बच्चों की सुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता

भारत में बच्चों की सुरक्षा पर खतरा लगातार बढ़ता जा रहा है। उनके खिलाफ अपराध में तेजी आ रही है, लेकिन कानून व्यवस्था के मोर्चे पर जैसे काम और इंतजाम होने चाहिए, उनका घोर अभाव दिखाई पड़ता है। एक के बाद एक यौन उत्पीड़न की घटनाएँ होती रहती हैं और सुधार के लिए की गई अच्छी सिफारिशें फाइलों में ही पड़ी रह जाती हैं। जिम्मेदार लोगों को एहसास नहीं है कि उन्होंने देश को बच्चों के लिए कितना असुरक्षित बना रखा है। वे सुधार और सुरक्षा माँग रहे हैं और ऐसे जरूरी बदलाव के लिए आज संघर्ष की आवश्यकता प्रतीत होती है।

इन अपराधों की पृष्ठभूमि को समझने की कोशिश करें तो यह बच्चों की सुरक्षा के प्रति गहरी संवेदनहीनता का परिणाम है। केंद्रीय गृह मंत्रालय के अधीन काम करने वाले राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने भारत में अपराधों पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट जारी नहीं की है। पिछले तीन वर्षों में हुए बलात्कार पीड़ितों की संख्या की जब हम तुलना करते हैं तो 18 या उससे कम उम्र की पीड़ितों की औसत संख्या में तीन गुना से भी ज्यादा इजाफा हुआ है; जबकि इसी दौर में 18 से ज्यादा उम्र की पीड़ितों की संख्या में लगभग दुगना इजाफा हुआ है।

हमारी अपराध न्याय व्यवस्था ऐसे मामलों से निपटने में कितनी कारगर है? राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो सजा मिलने और बरी होने के आँकड़े इसका उत्तर हैं। पोक्सो के तहत सजा दर 28.2 प्रतिशत थी; जबकि बच्चों के विरुद्ध सभी तरह के अपराधों में सजा दर 30.7 प्रतिशत थी। सजा दर का यह अंतर मेट्रोपॉलिटन शहरों में ज्यादा था। इन बड़े शहरों में सजा दर 29.3 प्रतिशत और 41.8 प्रतिशत थी। इन आँकड़ों से पता चलता है कि मामला बड़े शहरों का हो या छोटे शहरों या गाँवों का, बच्चों के विरुद्ध अपराध से निपटने में कानून-व्यवस्था समान रूप से अक्षम सिद्ध हो रही है।

ये आँकड़े बच्चों के खिलाफ होने वाले अपराधों की एक निराशाजनक तस्वीर पेश करते हैं। सैद्धांतिक रूप से कोर्ट में आरोपियों के जमानत पाने में कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन अलीगढ़ जैसी जघन्य घटनाएँ बताती हैं कि ऐसे ही मामलों में आरोपियों को जमानत पर छोड़ना कितना खतरनाक सिद्ध हो सकता है। ऐसे अपराध में जमानत पर छूटने वाले अपराधी खुले घूम रहे हैं और सुनवाई के दौरान भी वे अपराध को फिर दोहरा सकते हैं। ऐसे मामले सोचने पर मजबूर करते हैं कि हमारी अदालतों को ऐसे जघन्य अपराध के आरोपियों को जमानत देने से पहले पूरी तरह सोच-विचार कर लेना चाहिए।

मुजफ्फरपुर जैसा मामला भारतीय अपराध न्याय व्यवस्था के लिए आश्चर्यजनक नहीं होना चाहिए। वर्ष 2012 में भारत सरकार ने जस्टिस जे0एस0 वर्मा के नेतृत्व में एक समिति गठित की थी। समिति को यह जिम्मेदारी दी गई थी कि वह यौन उत्पीड़न के मामलों में तेज सुनवाई और अधिकतम सजा के लिए जरूरी बदलाव की सिफारिश करे।

दिसंबर, 2012 में दिल्ली की एक छात्रा से सामूहिक दुष्कर्म के बाद बड़े पैमाने पर हुए विरोध प्रदर्शन के बाद सरकार ने वह फैसला लिया था। समिति की रिपोर्ट बहुत ध्यान देने योग्य है। समिति ने अपनी रिपोर्ट के बाल यौन उत्पीड़न अध्याय में महिला आश्रय गृह, रोहतक का दौरा करने के बाद लिखा है कि यहाँ बच्चियों को बँधुआ मजदूर की तरह काम करने के लिए मजबूर किया जाता था। जरूरी भोजन और कपड़ों से भी वंचित रखा जाता था और आश्रय गृह के निदेशक और उनके परिवार के सदस्यों द्वारा शारीरिक और यौन हिंसा का शिकार भी होना पड़ता था। समिति ने पाया कि आश्रय गृह चलाने वाले प्रबंधक और स्थानीय पुलिस अफसरों के बीच करीबी रिश्ते थे।

समिति की रिपोर्ट अपने अवलोकनों में बहुत दुःखद तस्वीर पेश करती है। जो लोग भी इस आश्रय गृह में आते थे, यहाँ तक कि न्यायिक मजिस्ट्रेट ने भी अपने कर्त्तव्य को नजरअंदाज कर दिया था। यह केंद्र सरकार और उसकी एजेंसियों की घोर विफलता है, जिसने गरीबों को सशक्त बनाने की अपनी मूलभूत जिम्मेदारी को दूसरों के भरोसे छोड़ दिया है।

समिति ने सलाह दी कि इन आश्रय गृहों को निजी संगठनों के नियंत्रण से वापस ले लिया जाए और उच्च न्यायालयों की देख-रेख के अधीन तब तक रहें, जब तक संसद कड़े कारगर कानून नहीं बना लेती, जब तक योग्य देख-भालकर्त्ता, शिक्षक और मनोचिकित्सक नियुक्त नहीं हो जाते।

समिति ने पाया कि इन बच्चों को मुख्य धारा में लाने के लिए मनोचिकित्सा की जरूरत है। ऐसा नहीं है कि केवल बच्चों के खिलाफ अपराध के समय ही पुलिस, अदालत और सरकारी एजेंसियों की संवेदनहीनता सामने आती है। इस वर्ष जारी अजीम प्रेम जी विश्वविद्यालय और सीएसडीएस-लोकनीति की संयुक्त अध्ययन रिपोर्ट बताती है कि हर पाँच में से केवल एक व्यक्ति पुलिस और कोर्ट की कारगर और प्रक्रियागत निष्पक्षता के प्रति सकारात्मक राय रखता है। इसके विपरीत 41 से 58 प्रतिशत लोगों की इन दोनों संस्थानों के बारे में राय नकारात्मक है।

लोगों की ऐसी नकारात्मक राय बहुत दु:खद है; क्योंकि पुलिस और कोर्ट को अन्याय के खिलाफ निवारण माध्यम के रूप में देखा जाता है। यह जरूरी है कि हम अपराध से अपने बच्चों को बचाने के लिए संघर्ष की जरूरत महसूस करें, बिना ऐसा किए संपूर्ण व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन संभव नहीं हो सकता है। ❑

मरणासन्न माँ ने अपने पुत्र से करुणासिक्त वाणी में कहा—''मुझे दु:ख है बेटा कि मैं तुझे पढ़ा न सकी और अब तो मेरे पास समय भी नहीं शेष है। तेरे लिए सारा संसार ही पाठशाला है। तुझे जहाँ से जो मिल सके, वहाँ से सीखना, वही तेरे काम आएगा।'' इतनी बात कहकर माँ ने सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं।

पुत्र ने माँ की सीख गाँठ बाँध ली। अपने दादा जी को पत्थर तोड़ते देख वह पत्थर तोड़ने का काम करने लगा। इस संबंध में उसका ज्ञान प्रखर हुआ तो वह गोताखोरी का काम करने लगा और समुद्री चट्टानों के विषय में जानकारी प्राप्त कर ली। इसके बाद उसने संगतराश के घर नौकरी कर ली और पत्थरों के गुणों का अध्ययन करने लगा। धीरे-धीरे लाल रंग के पत्थर के संदर्भ में उसका ज्ञान उच्च कोटि का हो गया। तब उसने अपने अनुभवों को लिपिबद्ध करना प्रारंभ किया।

अपने अनुभव से प्राप्त ज्ञान को जब उसने पढ़े-लिखे लोगों के बीच बताना प्रारंभ किया तो वे भी आश्चर्यचकित रह गए। उसकी ख्याति अब मात्र इंग्लैंड में ही नहीं, बल्कि समूचे विश्व में फैलने लगी थी। यह बालक और कोई नहीं ह्यू मिलट था, जो अपनी माँ की सीख के कारण विश्वप्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री बना।

सबसे करें प्रेमपूर्ण व्यवहार

एक बार संत तुकाराम अपने आश्रम में बैठे हुए थे। उसी समय उनका एक शिष्य वहाँ पहुँचा। वह क्रोधी व उग्र स्वभाव का था। वह बार-बार अपने क्रोध पर नियंत्रण करने का प्रयास करता था, पर वह इसमें सफल नहीं हो पाता था। वह छोटी-से-छोटी बातों व चीजों को लेकर अक्सर अपने साथियों व पड़ोसियों से उलझ जाता था। वह परेशान होकर फिर संत तुकाराम के पास पहुँचा और बोला—''गुरुदेव! आप कठिन-से-कठिन, विपरीत-से-विपरीत परिस्थितियों में भी इतने शांत, सौम्य, सरल-सहज व प्रसन्नचित्त कैसे रह पाते हैं? आपको क्रोध क्यों नहीं आता? आप कभी अशांत क्यों नहीं होते? आप कभी उग्र क्यों नहीं होते? आप हमेशा इतने प्रफुल्लित कैसे रह पाते हैं? इसका क्या रहस्य है गुरुदेव?''

तुकाराम जी बोले—''मैं ये सब इसलिए कर पाता हूँ, क्योंकि मुझे तुम्हारा रहस्य पता है।'' शिष्य ने कहा—''मेरा कौन-सा रहस्य आपको पता है गुरुदेव!'' संत तुकाराम अपने चेहरे पर दुःख का भाव लिए हुए बोले—''रहस्य यह है कि तुम अगले एक सप्ताह में मरने वाले हो।'' तुकाराम जी की बात सुनकर शिष्य तो बहुत दुःखी हुआ। वह परेशान हो गया। यदि ऐसी बात उसे कोई और कहता तो वह इसे मजाक में टाल सकता था, पर स्वयं संत तुकाराम के मुख से निकली ऐसी बात को वह कैसे काट सकता था या उसे मजाक समझ कैसे टाल सकता था?

तुकाराम बोले—''जाओ तुम घर लौट जाओ।'' वह बहुत ही उदास मन से अपने गुरु का आशीर्वाद लेकर वहाँ से निकल पड़ा। मैं तो इस संसार में अब केवल सात दिनों का मेहमान हूँ। वह रास्ते में मन-ही-मन यही सोचता हुआ जा रहा था। वह सोचने लगा—''यदि यह संसार छोड़कर जाना ही है तो इस संसार के प्रति मैं इतनी घोर आसक्ति क्यों रखूँ। मैं क्यों सांसारिक रिश्ते-नाते, धन-दौलत के प्रति मोहग्रस्त और आसक्त रहूँ। अब जब मुझे इस संसार से सब कुछ छोड़कर जाना ही है तो मैं किसी से ईर्ष्या-द्वेष, वैर-भाव, क्रोध आदि क्यों रखूँ? मैं नश्वर चीजों के प्रति लोभ, मोह क्यों रखूँ? मैं क्यों न भगवान से प्रेम करूँ? मैं क्यों न सबसे प्रेम का व्यवहार करूँ? मैं किसी से नफरत व घृणा क्यों करूँ? सच्चे मन से ऐसी भावना करते-करते उस शिष्य के मन से सारे कषाय-कल्मष मिट गए।

उसी समय से उस शिष्य का स्वभाव बदल गया। वह हर किसी से प्रेम से मिलने लगा। जिस किसी के प्रति भी उससे अनुचित व्यवहार बन पड़ा था, उन सबसे उसने माफी माँग ली। वह अब किसी पर क्रोध नहीं करता था। इस भौतिक शरीर और भौतिक जगत की नश्वरता, क्षणभंगुरता का बार-बार स्मरण करते हुए, विचार करते हुए वह ईश्वर की शरणागति को ही श्रेष्ठ मानता हुआ, सच्चे मन से ईश्वर का ध्यान-भजन करने लगा।

अब वह बेकार की बातों में समय नष्ट करने के बजाय ज्यादातर समय ध्यान और पूजा में लगाता। अपने जीवन में किए गए पापों के लिए सच्चे मन से प्रायश्चित करने लगा। जिन लोगों से कभी मनमुटाव रहा हो या जिस किसी का भी उसने जाने-अनजाने दिल दुखाया हो—उन सभी से सच्चे हृदय से माफी माँगता, क्षमा माँगता और पुनः अपने जीवन की जिम्मेदारियों को पूरा कर प्रभुस्मरण में लीन हो जाता।

ऐसा करते-करते सातवाँ दिन भी आ पहुँचा। आज तो मेरे जीवन का अंतिम दिवस है, आज तो मेरी मृत्यु होने वाली है, ऐसा विचार करके उसने सोचा कि मृत्यु से पूर्व क्यों न मैं आज अपने गुरुदेव के दर्शन कर आऊँ? यही सोचकर वह संत तुकाराम जी के पास पहुँचा। उनके चरणों में उसने सादर शीश नवाया और बोला—''गुरुदेव! आज मेरे जीवन का अंतिम दिवस है। अतः आप मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे कि मैं शांतिपूर्वक इस संसार को त्याग सकूँ।''

संत तुकाराम जी बोले—''मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है पुत्र! शतायु भव!'' गुरु के मुख से शतायु होने का आशीर्वाद सुनकर शिष्य चकित रह गया। उसने कहा—''गुरुदेव! आज तो मेरे जीवन का अंतिम दिवस है, फिर मैं शतायु कैसे हो सकता हूँ?'' तुकाराम जी ने कहा—''अच्छा!

तुम यह बताओ कि पिछले सात दिन कैसे बीते? क्या तुम पहले की तरह ही लोगों से नाराज होते रहे, उनसे नफरत करते रहे, उनसे दुर्व्यवहार करते रहे?''

हाथ जोड़ते हुए वह बोला—''नहीं-नहीं, गुरुदेव! मैंने पिछले सात दिनों में ऐसा कुछ नहीं किया। मेरे पास जीने के लिए सिर्फ सात दिनों का समय बचा था। फिर इसे मैं किसी से नफरत करने, घृणा करने, दुर्व्यवहार करने आदि बेकार की चीजों में कैसे गँवा सकता था? मैं तो सबसे प्रेम से मिला और जिन लोगों का कभी दिल दुखाया था। उन सबसे क्षमा भी माँगी।''

संत तुकाराम मुस्कराए और बोले—''बस, यही तो मेरे अच्छे व्यवहार का रहस्य है। यही तो विपरीत-से-विपरीत और कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी मेरे सौम्य, शांत, सहज और प्रसन्नचित्त रहने का रहस्य है। मैं जानता हूँ कि मैं कभी भी मर सकता हूँ। इसलिए मैं नश्वर चीजों के प्रति कोई मोह नहीं रखता, कोई आसक्ति नहीं रखता। एकमात्र परमात्मा ही शाश्वत सुख के स्रोत हैं, इसलिए उन्हीं का ध्यान करता हूँ, उन्हीं का भजन करता हूँ। उन्हीं का स्मरण करता हूँ। सभी जीवों में आत्मा के रूप में परमात्मा विराजमान हैं, इसलिए मैं सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ।''

शिष्य समझ गया कि संत तुकाराम जी ने उसे जीवन की अनमोल शिक्षा देने के लिए मृत्यु का भय दिखाया था। उसने गुरु की बात गाँठ बाँध ली। वह घर लौट आया और तदनुरूप जीवन जीने लगा। इसीलिए सदा प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। ❑

कलियुग का प्रभाव बढ़ा तो पृथ्वीवासियों ने देवशक्तियों का तिरस्कार करना आरंभ कर दिया। जिन सूर्यदेव को नित्यप्रति अर्घ देने का क्रम था, उन्हें आग का गोला कहकर लोग संबोधित करने लगे। क्रुद्ध सूर्यदेव ने न उगने का निर्णय कर लिया। त्रिलोक में हाहाकार मच गया, प्राणी चेतनता खोने लगे। ऐसे में प्राची ने सूर्यदेव के समक्ष जाकर उनसे उगने की प्रार्थना की। सूर्यदेव क्रोध में थे, सो बोले—''मैं अनादिकाल से इन्हें अपने प्रकाश की किरणें देता आ रहा हूँ और आज ये उत्तर में मुझे कृतघ्नता ही प्रसारित करते हैं, मैं इन्हें अपनी एक किरण भी न दूँगा।''

प्राची गंभीर स्वर में बोली—''प्रभु! नादानों का कार्य ही नासमझी करना है, पर हमारा दायित्व तो यही है कि हम संकट में पड़े व्यक्तियों की सहायता करें। जितना बड़ा पद होता है, उतनी ही उससे जुड़ी जिम्मेदारियाँ होती हैं। आप सृष्टि के नियंता हैं, आपके मुँह मोड़ लेने से कष्ट वो भी पाएँगे, जो इस दुर्भाव के जिम्मेदार नहीं हैं।'' सूर्यदेव का क्रोध यह सुनकर समाप्त हो गया और वे अपने रथ पर आरूढ़ हो गए। तम से आच्छादित धरा प्रखर आलोक से उदीप्त हो गई।

ईश्वरीय प्रतिनिधि स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद वेदांत के विख्यात और प्रभावशाली आध्यात्मिक गुरु थे। उन्होंने अमेरिका स्थित शिकागो में सन् 1893 में आयोजित विश्व धर्म महासभा में भारत की ओर से सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व किया था। भारत.का आध्यात्मिकता से परिपूर्ण वेदांत दर्शन अमेरिका और यूरोप के हरेक देश में स्वामी विवेकानंद के ओजस्वी भाषण के कारण ही पहुँचा। उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी, जो आज भी अपना काम बखूबी कर रहा है। उन्हें प्रमुख रूप से उनके भाषण की शुरुआत 'मेरे अमरीकी भाइयो एवं बहनो' के साथ करने के लिए जाना जाता है। उनके संबोधन के इस प्रथम वाक्य ने सबका दिल जीत लिया था।

गौड़ मोहन मुखर्जी स्ट्रीट कलकत्ता स्थित स्वामी विवेकानंद का मूल जन्म स्थान जिसका पुनरुद्धार करके उसे अब एक सांस्कृतिक केंद्र का रूप दे दिया गया है; वहाँ उनका जन्म 12 जनवरी, सन् 1863 को कोलकाता (कलकत्ता) के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके बचपन का नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त कोलकाता (कलकत्ता) हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील थे।

नरेंद्र के दादाजी श्री दुर्गाचरण दत्त संस्कृत और फारसी के प्रसिद्ध विद्वान थे। उन्होंने अपने परिवार को 25 वर्ष की आयु में ही छोड़ दिया था और साधु बन गए थे। उनकी माता भुवनेश्वरी देवी धार्मिक विचारों वाली महिला थीं। उनका अधिकांश समय भगवान शिव की पूजा-अर्चना में व्यतीत होता था। नरेंद्र के पिता और उनकी माँ के धार्मिक, प्रगतिशील व तर्कसंगत दृष्टिकोण ने उनकी सोच और व्यक्तित्व को आकार देने में बहुत मदद की।

बचपन से ही नरेंद्र अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के तो थे ही साथ ही नटखट भी थे। अपने साथी बच्चों के साथ भी शरारत करते और मौका मिलने पर अपने अध्यापकों के साथ भी शरारत करने से नहीं चूकते थे। उनके घर में नियमपूर्वक रोज पूजा-पाठ होता था। धार्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण माता भुवनेश्वरी रोज पूजा-पाठ करती थीं।

धार्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण माता भुवनेश्वरी को पुराण, रामायण, महाभारत आदि की कथा सुनने का बहुत शौक था। भुवनेश्वरी देवी की स्मरणशक्ति अत्यंत तीव्र थी। कथावाचक बराबर इनके घर आते रहते थे। नियमित रूप से भजन-कीर्तन भी उनके यहाँ होता रहता था।

परिवार के धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के प्रभाव से बालक नरेंद्र के मन में बचपन से ही धर्म एवं अध्यात्म के संस्कार गहरे होते गए। माता-पिता के संस्कारों और धार्मिक वातावरण के कारण बालक के मन में बचपन से ही ईश्वर को जानने और उसे प्राप्त करने की लालसा दिखाई देने लगी थी। ईश्वर के बारे में जानने की उत्सुकता में कभी-कभी वे ऐसे प्रश्न पूछ बैठते थे कि इनके माता-पिता और कथावाचक पंडित जी तक अनुत्तरित हो जाते थे।

सन् 1871 में आठ साल की उम्र में, नरेंद्रनाथ ने ईश्वर चंद्र विद्यासागर के मेट्रोपोलिटन संस्थान में दाखिला लिया, जहाँ वे स्कूल गए। सन् 1877 में उनका परिवार रायपुर चला गया। सन् 1879 में कलकत्ता में अपने परिवार की वापसी के बाद वे एकमात्र छात्र थे, जिन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज प्रवेश परीक्षा में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किए थे। उन्हें दर्शन, धर्म, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, कला और साहित्य में बहुत रुचि थी। उन्होंने वेद, उपनिषदों, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत और पुराणों के अतिरिक्त अनेक हिंदू शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था।

नरेंद्र को भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रशिक्षित किया गया था और ये नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम व खेलों में भाग लिया करते थे। नरेंद्र ने पश्चिमी तर्क, दर्शन और यूरोपीय इतिहास का अध्ययन जनरल असेंबली इंस्टिट्यूशन (अब स्कॉटिश चर्च कॉलेज) में किया। सन् 1881 में इन्होंने ललित कला की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् 1884 में कला स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली थी।

युगनायक एवं विश्वसम्राट स्वामी विवेकानंद की ओजस्वी वाणी से ही वो शब्द निकले थे; जिसमें उन्होंने कहा था—"आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हम लोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अपार हर्ष से पूर्ण हो

रहा है। संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परंपरा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, धर्मों की माँ की ओर से धन्यवाद देता हूँ और सभी संप्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिंदुओं की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।

''मैं इस मंच से बोलने वाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राचीन काल के प्रतिनिधियों का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशों के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रचारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृत—दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार भी करते हैं।

''मुझे ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में उन यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनके पवित्र मंदिर को रोमन जाति ने अत्याचार से धूल में मिला दिया।

''ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान जरथुस्त्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो! मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं बचपन से करता आ रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

''अर्थात जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं; उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं। यह सभा जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है स्वत: ही गीता के इस अद्‌भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी घोषणा करती है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश:॥

''अर्थात जो कोई मेरी ओर आता है, चाहे किसी प्रकार से हो मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न मार्गों द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ओर ही आते हैं। सांप्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मांधता इस सुंदर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं व उसको बारंबार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को ध्वस्त करती हुई पूरे-के-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं।

''यदि ये वीभत्स दानवी शक्तियाँ न होतीं तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता, पर अब उनका समय आ गया है और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मांधता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुता का मृत्युनिनाद सिद्ध हो।''

उनतालीस वर्ष के संक्षिप्त जीवनकाल में स्वामी विवेकानंद जो कार्य कर गए, वे कार्य आने वाली अनेक शताब्दियों तक पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे। तीस वर्ष की आयु में स्वामी विवेकानंद ने शिकागो, अमेरिका के विश्व धर्म सम्मेलन में हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व किया और उसे सार्वभौमिक पहचान दिलवाई।

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक बार कहा था—''यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानंद को पढ़िए। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पाएँगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।'' रोम्यारोलां ने उनके बारे में कहा था—''उनके द्वितीय होने की कल्पना करना भी असंभव है, वे जहाँ भी गए, सर्वप्रथम ही रहे। हर कोई उनमें अपने नेता का दिग्दर्शन करता था। वे ईश्वर के प्रतिनिधि थे और सब पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेना ही उनकी विशिष्टता थी। हिमालय क्षेत्र में एक बार एक अनजान यात्री उन्हें देख ठिठककर रुक गया और आश्चर्यपूर्वक पुकारने लगा—'शिव!' यह ऐसा हुआ मानो उस व्यक्ति के आराध्य देव ने अपना नाम उनके माथे पर लिख दिया हो।

वे केवल संत ही नहीं, एक महान देशभक्त, वक्ता, विचारक, लेखक और मानवताप्रेमी भी थे। अमेरिका से लौटकर उन्होंने देशवासियों का आह्वान करते हुए कहा था—''नया भारत निकल पड़े मोची की दुकान से, भड़भूँजे के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से, निकल पड़े

झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।'' जनता ने स्वामी जी की पुकार का उत्तर दिया। वह गर्व से उनके साथ निकल पड़ी।

गांधी जी को आजादी की लड़ाई में जो जन-समर्थन मिला, वह विवेकानंद के आह्वान का ही फल था। इस प्रकार वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के भी एक प्रमुख प्रेरणास्रोत बने। उनका विश्वास था कि पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्यभूमि है। यहीं बड़े-बड़े महात्माओं व ऋषियों का जन्म हुआ, यही संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला हुआ है। उन्होंने संभी को उपनिषदों के वचनों से परिचित कराया—''उठो-जागो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने मनुष्य जन्म को सफल करो और तब तक नहीं रुको, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।''

उन्नीसवीं सदी के आखिरी वर्षों में विवेकानंद लगभग सशस्त्र या हिंसक क्रांति के जरिए भी देश को आजाद करना चाहते थे, परंतु उन्हें जल्द ही यह विश्वास हो गया कि परिस्थितियाँ उन इरादों के लिए अभी परिपक्व नहीं हैं। इसके बाद ही विवेकानंद ने 'एकला चलो' की नीति का पालन करते हुए एक परिव्राजक के रूप में भारत और दुनिया को खँगाल डाला। उन्होंने पुरोहितवाद, ब्राह्मणवाद, धार्मिक कर्मकांड और रूढ़ियों का पुरजोर विरोध किया और लगभग आक्रमणकारी भाषा में ऐसी विसंगतियों के खिलाफ युद्ध भी किया।

स्वामी जी ने संकेत दिया था कि विदेशों में भौतिक समृद्धि तो है और उसकी भारत को जरूरत भी है, लेकिन हमें याचक नहीं बनना चाहिए। हमारे पास उससे ज्यादा बहुत कुछ है, जो हम पश्चिम को दे सकते हैं और पश्चिम को उसकी अत्यंत जरूरत है। यह स्वामी विवेकानंद का अपने देश की धरोहर के लिए दंभ या बड़बोलापन नहीं था।

यह एक वेदांती साधु की भारतीय सभ्यता और संस्कृति की तटस्थ, वस्तुपरक और मूल्यगत आलोचना थी। बीसवीं सदी के घटनाक्रमों ने बाद में उसी पर मुहर लगाई। विवेकानंद के ओजस्वी और सारगर्भित व्याख्यानों की प्रसिद्धि विश्व भर में है। जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने शुक्ल यजुर्वेद की व्याख्या की और कहा—''एक और विवेकानंद चाहिए, यह समझने के लिए कि इस विवेकानंद ने अब तक क्या किया है।''

उनके शिष्यों के अनुसार जीवन के अंतिम दिन 4 जुलाई, 1902 को भी उन्होंने अपनी ध्यान करने की दिनचर्या को नहीं बदला और प्रात: दो-तीन घंटे ध्यान किया तथा ध्यानावस्था में ही अपने ब्रह्मरंध्र को भेदकर महासमाधि ले ली। बेलूर में गंगातट पर चंदन की चिता पर उनकी अंत्येष्टि की गई। इसी गंगा तट के दूसरी ओर उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस का सोलह वर्ष पूर्व अंतिम संस्कार हुआ था। उनके शिष्यों और अनुयायियों ने उनकी स्मृति में वहाँ एक मंदिर बनवाया और समूचे विश्व में विवेकानंद तथा उनके गुरु रामकृष्ण के संदेशों के प्रचार के लिए 130 से अधिक केंद्रों की स्थापना की। ❑

ऋषि अर्थात वे जिनका निर्वाह न्यूनतम में चलता हो और बची हुई सामर्थ्य-संपदा को ऐसे कार्यों में नियोजित किए रहते हों, जो समय की आवश्यकता पूरी करें। वातावरण में सत्प्रवृत्तियों का अनुपात बढ़ाएँ। जो श्रेष्ठता की दिशा में बढ़ रहे हैं, उन्हें मनोबल अनुकूल मिले। जो विनाश को आतुर हैं, उनके कुचक्रों को सफलता न मिले। संक्षेप में यही हैं वे कार्य निर्धारण, जिनके लिए ऋषियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रयास अनवरत गति से चलते रहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

चिकित्साशास्त्र के जनक—आचार्य चरक

भारतवर्ष ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व में चरक एक महर्षि एवं आयुर्वेद विशारद के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ 'चरक संहिता' का संपादन किया। चरक संहिता आयुर्वेद का प्राचीनतम ग्रंथ है, जिसमें रोगनिरोधक एवं रोगनाशक दवाओं का उल्लेख है। इसके साथ-ही-साथ इसमें सोना, चाँदी, लोहा, पारा आदि धातुओं से निर्मित भस्मों एवं उनके उपयोग की विधि बताई गई है।

कुछ लोग भ्रमवश आचार्य चरक को 'चरक संहिता' का रचनाकार बताते हैं, पर हकीकत यह है कि उन्होंने आचार्य अग्निवेश द्वारा रचित 'अग्निवेश तंत्र' का संपादन करने के पश्चात उसमें कुछ स्थान तथा अध्याय जोड़कर उसे नया रूप प्रदान किया। अग्निवेश तंत्र का यह संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण ही बाद में 'चरक संहिता' के नाम से जाना गया। उनके द्वारा प्रतिस्थापित सिद्धांत आज भी उतने ही कारगर हैं, जितने उनके समय में थे।

चरक पहले चिकित्सक हैं, जिन्होंने पाचन, चयापचय और शरीर प्रतिरक्षा की अवधारणा दुनिया के सामने रखी। उन्होंने बताया कि शरीर के कार्य के कारण उसमें तीन स्थायी दोष पाए जाते हैं, जिन्हें वात, पित्त एवं कफ के नाम से जाना जाता है। ये तीनों दोष शरीर में जब तक संतुलित अवस्था में रहते हैं, व्यक्ति स्वस्थ रहता है; लेकिन जैसे ही इनका संतुलन बिगड़ जाता है, व्यक्ति बीमार हो जाता है। इसलिए शरीर को स्वस्थ करने के लिए इस असंतुलन को पहचानना और उसे फिर से पूर्व की अवस्था में लाना आवश्यक होता है।

रोगस्तु दोष वैषम्यं, दोष साम्यम् आरोग्यता।

भारतीय संस्कृति में ब्रह्मा को सृष्टि का रचयिता माना गया है। कहा जाता है कि ब्रह्मा ने मनुष्यों को पैदा किया। जब मनुष्य पैदा हुए तो उनके साथ भाँति-भाँति के रोग भी उत्पन्न हुए। उन रोगों से निपटने के लिए ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान सर्वप्रथम प्रजापति को दिया। प्रजापति से यह ज्ञान अश्विनीकुमारों के पास पहुँचा।

वैदिक साहित्य में अश्विनीकुमारों के चमत्कारिक उपचार की अनेक कथाएँ पढ़ने को मिलती हैं। अश्विनी-कुमारों की विद्या से अभिभूत होकर देवराज इंद्र ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। 'चरक संहिता' के अनुसार एक बार धरती पर अनेक महामारियों का प्रकोप हुआ। इससे चिंतित होकर तमाम ऋषियों ने हिमालय की तराई में एक बैठक बुलाई।

इस बैठक में असित, अगस्त्य, अंगिरा, आस्वराथ्य, आश्वलायन, आत्रेय, कश्यप, कपिंजल, कुशिक, कंकायण, जमदग्नि, वसिष्ठ, भृगु, आत्रेय, गौतम, सांख्य, पुलस्त्य, नारद, वामदेव, मार्कण्डेय, पारीक्षी, भरद्वाज, मैत्रेय, विश्वामित्र, भार्गव, च्यवन, अभिजित, गर्ग, शाण्डिल्य, कौडिन्य, वार्कषी, देवल, मैम्तायानी, वैखानसगण, गाल्व, वैजवापी, बादरायण, बडिश, शरलोमा, काप्य, कात्यायन, धौम्य, मरीचि, काश्यप, शर्कराक्ष, हिरण्याक्ष, लौगाक्षी, पैन्गी, शौनक, शाकुनेय, संक्रित्य एवं बालखिल्यगण आदि ऋषियों ने भाग लिया।

बैठक में सर्वसम्मति से भरद्वाज को प्रमुख चुना गया और बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए उन्हें इंद्र के पास भेजा गया। इंद्र ने आयुर्वेद का समस्त ज्ञान ऋषि भरद्वाज को दिया। बाद में भरद्वाज ने अपने शिष्य आत्रेय-पुनर्वसु को इस महत्त्वपूर्ण ज्ञान से परिचित कराया।

आत्रेय-पुनर्वसु के छह शिष्य थे—अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि। बाद में इन शिष्यों ने अपनी-अपनी प्रतिभानुसार आयुर्वेद ग्रंथों की रचना की। इनमें से ज्यादातर ने आत्रेय के ज्ञान को ही संगृहीत किया और उसमें थोड़ा-बहुत परिमार्जन किया। आत्रेय के इन तमाम शिष्यों में अग्निवेश विशेष प्रतिभाशाली थे। उनके द्वारा संगृहीत ग्रंथ ही कालांतर में 'चरक संहिता' के नाम से जाना गया। चूँकि चरक संहिता के रचनाकार अग्निवेश थे, इसलिए उसे 'अग्निवेश संहिता' के नाम से भी जाना जाता है।

जिन चरक के द्वारा अग्निवेश संहिता का संपादन कर उसे चरक संहिता का स्वरूप प्रदान किया गया, वे कब

पैदा हुए, उनका जन्म कहाँ पर हुआ, इतिहास में इसका कोई वर्णन नहीं मिलता है। 'त्रिपिटक' के चीनी अनुवाद में चरक का परिचय कनिष्क के राजवैद्य के रूप में दिया गया है, किंतु ध्यान देने वाली बात यह है कनिष्क बौद्ध राजा था और उसका कवि अश्वघोष भी बौद्ध था, पर चरक संहिता में बौद्ध मत का जोरदार खंडन किया गया है। इससे यह बात गलत साबित हो जाती है कि चरक कनिष्क के राजवैद्य थे। विद्वानगण इस कथन का आशय इस तरह से लगाते हैं कि चरक कनिष्क के समय में रहे होंगे। चरक संहिता में अनेक स्थानों पर उत्तर भारत का जिक्र मिलता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि चरक उत्तर भारत के निवासी रहे होंगे। दुर्भाग्यवश इसके अलावा चरक के विषय में अन्य कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

आयुर्वेद के विकास की जो कहानी प्रचलित है, उसमें भरद्वाज, पुनर्वसु और अग्निवेश ही ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक व्यक्ति माने गए हैं। भगवान बुद्ध के काल में मगध राज्य में जीवक नाम के प्रसिद्ध वैद्य का जिक्र मिलता है। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए चरक तक्षशिला गए थे। वहाँ पर उन्होंने आचार्य आत्रेय से आयुर्वेद की दीक्षा प्राप्त की।

इससे यह कहा जा सकता है कि आत्रेय-पुनर्वसु संभवत: आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले हुए। इसका तात्पर्य यह भी निकलता है कि चरक आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व हुए। आचार्य चरक के जीवन वृत्तांत का सुस्पष्ट परिचय भले ही नहीं मिलता हो, परंतु जीवन एवं स्वास्थ्य के संदर्भ में उनका योगदान अभूतपूर्व है। ❑

एक व्यक्ति के मरने का समय निकट आया। स्वर्ग से देवदूत उसे लेने पहुँचे और बोले—''चलिए! हम आपको स्वर्ग ले जाने आए हैं।'' स्वर्ग का नाम सुनकर उस व्यक्ति के मन में लोभ जागा और वह बोला—''हे देवदूतो! आप तो कृपानिधान हैं। जन्म-मृत्यु का चक्र तो अनवरत चलता रहता है। थोड़ी आयु उस जन्म की निकालकर इस जन्म में लगा दीजिए तो मुझे एक वर्ष और जीने का अवसर मिल जाए।'' देवदूत हँसे और बोले—''ठीक है। आप एक वर्ष और आयु का भोग कर लीजिए।''

एक वर्ष तक उस व्यक्ति ने खूब मौज-मस्ती की और देखते-देखते वर्ष बीत गया। एक वर्ष बाद उसे लेने यमदूत आए और बोले—''चलो! हम तुम्हें नरक ले जाने आए हैं।'' वह व्यक्ति नरक का नाम सुनकर घबराया और बोला—''आप क्यों मजाक करते हैं। मेरा स्थान तो स्वर्ग में नियत था।'' दूत बोले—''वो सही है, पर इस एक वर्ष में तुमने कोई पुण्य अर्जित नहीं किया, परंतु विसर्जित सारे पुण्य किए हैं। अब आपकी बारी पाप भोगने की है।''

मनुष्य यही भूल बार-बार करता है कि वह पुण्य के द्वार बंद कर लेता है और पापों को एकत्रित कर स्वर्ग की कामना करता है। यह दृष्टिकोण बदल जाए तो स्वर्ग धरती पर ही अवतरित हो जाए।

किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से बाहर निकलें

कई बार हमारे सामने इतने सारे काम हो जाते हैं कि कहाँ से प्रारंभ करें, किस क्रम में उन्हें करें, यह समझ ही नहीं आता। कुछ न सूझ पाने के ये पल बहुत कष्टमय एवं पीड़ादायक होते हैं, जिनसे बाहर निकलने के लिए व्यक्ति तड़पता है, लेकिन उसे कुछ सूझ नहीं पाता। ऐसा लगता है कि जीवन की गाड़ी जैसे ठहर-सी गई। किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के ये पल अपने चरम पर जीवन को साक्षात् नरक बना देते हैं। यहाँ कुछ ऐसे सूत्र दिए जा रहे हैं, जो इस दुविधा से व्यक्ति को बाहर निकालने में सहायता करते हैं।

सबसे पहले इस मनोदशा से बाहर निकलने का मन बना लें। इसके बाद ही अगला चरण संभव होगा। अब अपनी टेबल पर या घर के किसी शांत-एकांत कोने में कागज, नोटबुक और पेन लेकर बैठ जाएँ। मन में जो भी कार्यों को लेकर अस्त-व्यस्त विचार उमड़-घुमड़ रहे हैं, इनको कागज पर एक-एक करके उतारते जाएँ। इसके साथ मन में विचारों का अँधड़ कुछ शांत होने लगेगा, मन का भार भी कुछ हलका होता जाएगा।

इन विचारों या कार्यों को अब क्रमबद्ध करें। पहले इनको दैनिक कार्यक्रम के आधार पर सूचीबद्ध करें। कार्यों के महत्त्व के आधार पर इनकी सूची बनाएँ। इस तरह से दिन में जो सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं, इनको सबसे पहले अंजाम दिया जाना चाहिए, फिर दूसरे नंबर के कार्य को पूरा करना चाहिए। इस तरह कार्यों के महत्त्व के आधार पर दिन भर का एक कार्यक्रम बन जाएगा। इतना करने भर से किंकर्त्तव्यविमूढ़ता का कुहासा छँटने लगेगा और हाथ में किस कार्य को तत्काल लिया जाना है, यह भी स्पष्ट हो जाएगा।

यदि दैनिक कार्यों की शृंखला बहुत लंबी हो रही है तो एक दिन में इनका समेटना संभव नहीं हो पाता। ऐसे में विचार करें कि क्या सभी कार्य नियमित रूप पर किए जाने आवश्यक हैं। हो सकता है कि कुछ कार्य इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हों तथा इन्हें एक दिन छोड़कर भी किया जा सकता हो, जिससे वे सप्ताह या माह तक पूरे हो जाएँ। कुछ कार्य हो सकता है कि साप्ताहिक आधार पर सप्ताह अंत में किए जाएँ तो भी काम चल जाए।

इस तरह प्रारंभ में बनाई गई कार्यों की सूची को दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक आधार पर सूचीबद्ध किया जा सकता है। इसके साथ सभी कार्य यथास्थान पर आबंटित हो जाएँगे और कई सारे कार्यों को एक साथ करने का दबाव कम हो जाएगा और दिन में 3-4 कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर बखूबी अंजाम दिया जा सकता है। ऐसे में हमारी कार्यक्षमता में संतोषजनक वृद्धि होगी और जीवन नए उत्साह एवं ताजगी के साथ भर जाएगा।

इस तरह से शाम को या रात को सोने से पहले दिन भर के कार्यों का लेखा-जोखा एवं आत्मनिरीक्षण का क्रम यदि दिनचर्या का अंग बनता गया तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति आने की नौबत ही नहीं आएगी और जीवन की गाड़ी पटरी पर सरपट दौड़ती नजर आएगी। ❑

निष्ठा भरे पुरुषार्थ में अद्भुत आकर्षण होता है। उसका प्रभाव भले-बुरे दोनों तरह के प्रयोगों में दिखाई देता है। जब चोर-उचक्के, लुटेरे-लफंगे, दुराचारी, व्यभिचारी, नशेबाज, धोखेबाज मिल-जुलकर अपने-अपने सशक्त गिरोह बना लेते हैं तो कोई कारण नहीं कि सृजन संकल्प के धनी, प्रामाणिक और प्रतिभाशालियों को अंत तक एकाकी ही बना रहना पड़े।

— परमपूज्य गुरुदेव

महर्षि दयानंद के जीवन से मिलती दिव्य प्रेरणाएँ

स्वामी दयानंद सरस्वती की साधुता और विद्वत्ता उनके आचरण से प्रस्तुत होती थी। उनकी सरलता, निश्छलता, निर्भीकता उनके जीवन व्यवहार में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे। वे जिन वैदिक मूल्यों व धार्मिक उपदेशों का प्रचार करते थे, उन्हीं के अनुरूप उनका जीवन भी था। सनातन धर्म के नाम पर फैले पाखंड व मूढ़ मान्यताओं का वे खुलकर खंडन करते थे। इस कारण कई लोग उनसे द्वेष करते थे, पर वे स्पष्ट सच्ची बातें कहने से कभी नहीं चूकते थे। वे कहते कि सत्य कहने के लिए मुझे मृत्यु का भी दंड मिले तो भी मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।

एक बार उन्हें कुछ लोगों ने कहा—"महाराज! सच्ची व खरी बातें कहने के कारण कुछ लोग आपकी जान के दुश्मन बने हुए हैं और वे आपको मारने की फिराक में हैं।" तब दयानंद जी ने कहा—"आप कहना क्या चाहते हैं? क्या मैं अपने शरीर की रक्षा के लिए सत्य बोलना और सत्य का साथ छोड़ दूँ? नहीं, मैं ऐसा हरगिज नहीं कर सकता। मेरी आत्मा तो अजर-अमर है, फिर मैं शरीर की चिंता क्यों करूँ। शरीर के मरने या मारे जाने की चिंता क्यों करूँ?" और एक दिन सचमुच वही हुआ, जिसकी आशंका थी।

एक बार स्वामी जी के विरोधियों ने उनके रसोइये को पैसे का लालच देकर उनके भोजन में विष मिलवा दिया। यह बात स्वामी जी को पता चल गई। रसोइया भी घबरा गया। स्वामी जी ने उसे बुलाया और पूछा—"तूने यह पाप क्यों किया?" उसने आँखों में आँसू भरकर कहा—"रुपये के लालच में।" स्वामी जी ने पूछा—"कितने रुपयों का लोभ तुझे दिया गया?" रसोइये ने कहा—"पाँच सौ रुपये का।" उसने फिर कहा—"महाराज! मैंने बड़ा पाप किया है। अब तो वह फल मेरे कर्म में ही बदा है।"

स्वामी जी ने अपने पास में रखी हुई पाँच सौ रुपयों की थैली उठाई और रसोइये को हाथ में देते हुए कहा—"ले! जिस लोभ से तूने यह पाप किया है, वह इच्छा पूरी कर। यह रुपये लेकर तू कहीं पहाड़ों की तरफ भाग जा। देर न कर, वरना पकड़ा जाएगा, फिर मैं बचा न सकूँगा।" रसोइया रुपया लेकर भाग गया। उधर स्वामी जी ने नौली क्रिया करके उस जहर को निकाल दिया, पर फिर भी जहर ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया था। विष के प्रभाव से उनके शरीर में फफोले पड़ गए।

उधर जब स्वामी जी के भक्तों को रसोइये की करतूत के बारे में पता चला तो उन्होंने उसकी रिपोर्ट तहसीलदार को दे दी। तहसीलदार ने उस रसोइये को पकड़वा लिया। उसे हथकड़ी व बेड़ी से बाँध दिया गया। तहसीलदार सिपाहियों सहित उसको लेकर स्वामी जी के पास पहुँचे। वे बोले—"महाराज! अपराधी सामने खड़ा है। यह दुष्ट आपको जहर देकर भाग गया था। अब उसे पकड़ लिया गया है। आप आज्ञा दीजिए, इसे क्या सजा दी जाए?"

स्वामी जी ने हँसते हुए उत्तर दिया—"भाई! मैंने तो इसके खिलाफ कोई रिपोर्ट की नहीं; फिर इस बेचारे को क्यों पकड़ा? खैर, इसको इसी समय छोड़ दो। मैं लोगों को कैद कराने नहीं, कैद से छुड़ाने आया हूँ।" स्वामी जी के वचन सुनते ही सब निस्तब्ध हो उनकी ओर देखने लगे। उनके द्वारा अपराधी को क्षमादान करने ने सबको आश्चर्यचकित कर दिया, फिर आहिस्ता से अपराधी की हथकड़ी-बेड़ी खोल दी गईं। वह रसोइया बजाय भागने के स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा। वह बिलख-बिलखकर रोने लगा, पर स्वामी जी ने तो उसे सचमुच माफ कर दिया था। उन्होंने अपने हर कर्म से जनमानस को शिक्षा दी। उन्हें ज्ञान दिया। उन्हें वेदों के मौलिक व वास्तविक ज्ञान से परिचित कराया। उन्हें धर्म के नाम पर पाखंड व मूढ़ मान्यताओं से मुक्त किया।

अब स्वामी जी मृतप्राय हो चले थे। उनसे मिलने व उनके अंतिम दर्शन को कई लोग आए। उन्हीं में से एक श्री गुरुदत्त विद्यार्थी भी थे, जो एक बड़े विद्वान दर्शनशास्त्री व एक कट्टर नास्तिक थे। स्वामी जी से उन्हें इतनी घृणा थी कि वे उनका मुँह देखना तक पसंद नहीं करते थे। जब गुरुदत्त को पता चला कि स्वामी जी मृतप्राय हो चले हैं तो उन्होंने सोचा कि चलो चलकर देखते हैं कि वह पापी

कितने कष्ट से मरता है। आज उसका छटपटाना तो देख लूँ। यही सोचकर वे स्वामी जी के पास पहुँचे थे।

वहाँ मरणासन्न महर्षि दयानंद, प्रसन्नमुख होकर वहाँ खड़े लोगों को उपदेश दे रहे थे। जहर के प्रभाव से सारे शरीर में फफोले थे, पर आस-पास भी कहीं 'आह' शब्द नहीं था। ऐसा जान पड़ता था जैसे कोई स्वस्थ पुरुष हँस-हँसकर उपदेश दे रहा हो। देखते-ही-देखते 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो। ॐ' कहते हुए स्वामी जी ने अंतिम साँस ली। चारों ओर से आँसुओं की सरिता बह चली।

वहाँ केवल एक ही व्यक्ति था, जो दूर कोने में खड़ा एकटक ऋषि-मुख की ओर देख रहा था। वह गुरुदत्त विद्यार्थी थे। उन्होंने देखा महर्षि के मुख पर, चेहरे पर अभी भी अपूर्व तेज है, प्रफुल्लता है, शांति है। आँखों में न तो आँसू थे न ही चेहरे पर कोई शिकन, न ही दु:ख का कोई नामोनिशान। यह सब देखकर गुरुदत्त का मन उनसे कह रहा था—''गुरुदत्त, तुम उससे नफरत कर रहे थे, जो नफरत से परे था। तुम उससे घृणा कर रहे थे, जो प्रेम से पूर्ण था।''

गुरुदत्त की आँखों में आँसू भर आए। वे आज सचमुच पुस्तकों में नहीं, अपने जीवन के पृष्ठों पर ऋषि दयानंद के चरित्र को देख रहे थे, लिख रहे थे। वह नास्तिक गुरुदत्त से आस्तिक गुरुदत्त हो चुके थे। सचमुच महर्षि दयानंद ने अपने हर आचरण व व्यवहार से लोगों को सीख दी, प्रेरणा दी। धन्य हैं ऐसे ऋषि, धन्य हैं ऐसे महर्षि। वे सचमुच महान थे। हम सबके प्रेरणास्रोत थे। उनके जीवन से हम ऐसी अनेक दिव्य प्रेरणाएँ लेकर अपने जीवन को दिव्य बना सकते हैं। उनकी महान रचना 'सत्यार्थ प्रकाश' आज भी हमें सत्य के प्रकाश से आलोकित कर रही है। ❑

राजा रघु ने एक बार सर्वमेध यज्ञ किया और इस यज्ञ के अनुरूप उन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया। ऋषि कौत्स भी इस यज्ञ में लोक-कल्याण हेतु राजा से सहयोग प्राप्त करने हेतु पहुँचे, परंतु वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि राजा अपना सर्वस्व दान कर चुके हैं, उनके पास मात्र आसन व मृत्तिका पात्र ही शेष था। ऐसी स्थिति देखकर ऋषि कौत्स कुछ न कहकर मन में निराशा लिए लौटने लगे।

ऋषि को लौटते देख राजा रघु ने ऋषि से उनका अभीष्ट जानना चाहा। ऋषि का मनोरथ जानकर उन्हें रुकने के लिए कहा और प्रभु से प्रार्थना करने लगे। माता लक्ष्मी ने राजा की निष्कामता और ऋषि की परमार्थ-भावना को समझते हुए राजकोष को विपुल स्वर्ण राशि से भर दिया।

राजा ने राजकोष के द्वार महर्षि के लिए खोल दिए, परंतु ऋषिवर ने अभीष्ट संपदा ही ली, शेष संपदा का राजा ने पुनः राज्य में सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन हेतु दान कर दिया। धर्म के प्रति आस्थावान व्यक्ति परमार्थ-प्रयोजन के लिए जो प्रयत्न करते हैं, वे अपूर्ण नहीं रहते, दैवी शक्तियाँ उनकी सहायक बनती हैं।

संवेदना से जुड़ने से है सेवा की सार्थकता

हृदय हमारी भावनाओं का, हमारी संवेदनाओं का केंद्र है। हम विचारशील होते हैं मस्तिष्क से और संवेदनशील होते हैं हृदय से। विचारशील तो हम हैं, तर्कशील तो हैं; लेकिन संवेदनशील भी हैं; इसमें थोड़ा-सा संदेह है। हमारा जो जीवनक्रम है उसमें संवेदनाएँ दब गई हैं, छिप गई हैं। हमारे जीवन में भावनाओं का विकास और भावनाओं की सुगंध, दोनों दिखाई नहीं देते हैं।

आज विचारों की उर्वरता तो है इसलिए आध्यात्मिक विषयों पर बहुत कुछ लिखा जाता है। दुनिया में इस विषय पर किताबें भी बहुत हैं, लेकिन अगर हम देखें कि क्या सचमुच कोई आध्यात्मिक व्यक्ति है? तो नहीं है; क्योंकि सारी पुस्तकें जो अध्यात्म पर लिखी गई हैं वो साधना-तपस्या के निष्कर्ष से नहीं निकली हैं, बल्कि वो बौद्धिक कुशलता से निकली हैं। उनका स्रोत बुद्धि, विचार, तर्क, कल्पना है। अगर हम देखें कि मनुष्य के स्वार्थ ने क्या किया है; अहंकार ने क्या किया है तो इस स्वार्थ ने मनुष्यता को निगल लिया है। इसने संवेदना को निगल लिया है और हमारे अंदर अगर कोई संवेदना जगती भी है तो हम डर के कारण, भय के कारण उसको दबा देते हैं। भावनाएँ भय के बोझ से दब गई हैं।

आज विचार हमें समझाते हैं, तर्क हमें समझाते हैं, लोग हमें समझाते हैं कि आज के दौर में संवेदित होने का, संवेदना का कोई स्थान नहीं है; इसलिए हृदय की ओर उन्मुख व्यक्ति आज नहीं हैं। संवेदना अब शब्दों में सिमट गई है। केवल इसके शब्द रह गए हैं अर्थ नहीं। कोई आदमी किसी की सेवा नहीं करना चाहता, इसलिए लोग यह करते हैं कि सेवा करते हुए फोटो खिंचाकर उसका प्रचार करके संतुष्ट हो जाते हैं; क्योंकि जब फोटो खिंचाने से काम चल जाता है तो सेवा का कष्ट कौन उठाए?

यही है स्वार्थ और यही है अहंकार। हमें कोई मतलब नहीं है कि समाज में, देश में क्या हो रहा है; क्योंकि लोग इसके बारे में संवेदित नहीं हैं। न राजा संवेदित है और न ही प्रजा। परेशानी किसी को नहीं है। हर व्यक्ति अवसर का फायदा उठाना चाहता है। दूसरों से लाभ कमाना चाहता है, लेकिन अपना किसी भी तरह से नुकसान नहीं चाहता। हृदय, संवेदना—ये शब्द हैं और इसी कारण अगर हम देखें तो संसार में मनुष्यता, मानवता, जीवन का रस एक तरह से सूख गया है। जीवन मुरझा गया है तो इसका केवल एक कारण है कि संवेदनाएँ सिंचित नहीं हैं। संवेदनाओं में अभिसिंचन नहीं है।

हर आदमी एकदूसरे से फायदा लेने में जुटा हुआ है और इसके अलावा कहीं कुछ नहीं है। इस फायदे के लिए ही सबके अपने-अपने स्वार्थ, अपने-अपने ढंग, अपनी-अपनी रीति है, लेकिन यह जीवन का अपमान है। यह जीवन का सम्मान नहीं है। दुनिया में ज्ञान इसलिए नहीं है कि उस ज्ञान से हमें लाभ हुआ और हम उससे दूसरों को लाभ दे रहे हैं, बल्कि इसलिए है कि लोग हमें ज्ञानी समझें और हमारे अहंकार की तुष्टि हो।

ज्ञान तो वर्षों की साधना की निष्पत्ति है। वर्षों की साधना का निष्कर्ष है, लेकिन हमें इससे क्या लेना-देना। लोग हमारा सम्मान कर रहे हैं। हमारा अहंकार पोषित हो रहा है बस, इतना ही ज्ञान हमारे लिए पर्याप्त है। वास्तव में ज्ञान हमारे पास है या नहीं है, इससे हमें कोई मतलब नहीं है, लेकिन इस ज्ञान से जुड़ा हुआ सम्मान हमारे पास होना चाहिए। इसके लिए हम सजग हैं। इसके लिए हम प्रयासरत हैं। ज्ञान हमारे पास है तो क्या हुआ और नहीं है तो क्या हुआ? ज्ञानी होने का हमारे पास सम्मान है। लोग हमें ज्ञानी जानते हैं बस। दुनिया में हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है।

आज लोगों की सोच ऐसी है। साधना पर ग्रंथ बहुत से हैं, लेकिन साधना नहीं है। ज्ञान का प्रसार बहुत है, किंतु ज्ञान नहीं है। शब्दों की बस, हेरा-फेरी हो रही है। हमारा न तो मस्तिष्क पोषित है और न ही हृदय। मस्तिष्क की उर्वरता सिर्फ और सिर्फ स्वार्थ और अहंकार में लग रही है। ऐसी स्थिति में आज हमारे हृदयकेंद्र को जाग्रत करने की आवश्यकता है। हृदय के केंद्रीकरण की आवश्यकता है। जीवन में सबको प्यार की तलाश है। सभी प्यार पाना चाहते

हैं। सभी चाहते हैं कि उनका जीवन संवेदना से सिंचित हो, किंतु इसे सिंचित करना नहीं चाहते, सिंचित होना चाहते हैं। प्यार पाना चाहते हैं, पर प्यार देना नहीं चाहते।

ईसामसीह बाइबिल में कहते हैं कि जो तुम बोओगे वो तुम काटोगे। बोने की हमें फुरसत नहीं है। पुण्य करने की आवश्यकता हम नहीं महसूस करते कि हम पुण्य करें, परंतु हम पुण्य का फल पाना चाहते हैं। शुभ कर्म करना नहीं चाहते, सत्कर्म करना नहीं चाहते, किंतु सत्कर्मों के परिणाम पाना चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि हमारे साथ कुछ अच्छा-अच्छा, सब कुछ अच्छा-अच्छा होता चला जाए, लेकिन हम अच्छे कर्म करें, अच्छे भाव रखें व अच्छे विचार रखें—इसकी आवश्यकता महसूस नहीं होती।

हम पेड़ काटना तो चाहते हैं। हम चाहते हैं कि जंगल की सारी लकड़ियाँ हमारी हो जाएँ, इसलिए जंगल तो काटना चाहते हैं, उजाड़ना तो चाहते हैं, लेकिन वृक्षारोपण नहीं करना चाहते। जब हम जंगल काटते ही चले जाएँगे, पर वृक्षारोपण नहीं करेंगे तो जंगल रहेंगे कहाँ? ऐसा नहीं है कि पहले कोई पेड़ नहीं काटता था। पहले भी लोग पेड़ काटते थे, लेकिन पहले लोग पेड़ काटने के साथ पेड़ लगाते भी थे। अब पेड़ काटते तो हैं, लेकिन पेड़ लगाने की किसी को फुरसत नहीं है और इसका कारण है कि हम कहीं पर भी, जीवन के किसी भी स्तर पर भी संवेदनशील नहीं हैं। हम संवेदित नहीं हैं। हम भावनाशील नहीं हैं। हमारे अंदर वो भाव नहीं है कि कहीं कुछ संकट हो और हम दौड़कर मदद करें।

आज हम देखते हैं कि जीवन दुर्दशाग्रस्त है। जीवन आज संकट में है, मनुष्यता आज संकट में है तो वह इसलिए नहीं है कि कहीं कोई बड़ी आपदा आ गई है, बल्कि कारण यह है कि आज संवेदनाएँ, भावनाएँ सूख गई हैं। बिखर गई हैं, विक्षुब्ध होकर शुष्क हो गई हैं। दुनिया में संवेदना सूखती जा रही है और इसलिए हमें दूसरों की, यहाँ तक की जीव-जंतुओं की पीड़ा-परेशानी भी नजर नहीं आती और यही कारण है कि आज दुनिया में शाकाहार की तुलना में मांसाहार का बहुत वर्चस्व है।

इस सब के होने के बावजूद दुनिया में ऐसे संवेदनशील लोग भी हैं, जो दूसरों को पीड़ा व कष्ट में नहीं देख सकते। इन्हीं लोगों में से एक थे—जीव-जंतु प्रेमी 'जॉर्ज बर्नार्ड शॉ'। उनके जीवन का एक विशेष प्रसंग है—एक बार वे बहुत बीमार पड़े तो उनसे डॉक्टरों ने कहा कि अगर वे अंडे और मांस का शोरबा लेंगे तो ही स्वस्थ हो पाएँगे। उन्होंने जब इसके लिए इनकार कर दिया तो उन्हें डॉक्टरों ने बहुत समझाया और कहा कि यदि वे उनकी बात नहीं मानेंगे तो वे अवश्य ही मर जाएँगे, परंतु फिर भी जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने डॉक्टरों का आदेश मानने से इनकार कर दिया। डॉक्टर भी अपना निर्णय बदलने को तैयार नहीं हुए और अंत में उन्होंने उनसे कह दिया कि उन्हें अब इस बीमारी से छुटकारा नहीं दिलाया जा सकता।

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ की हालत जब एकदम बिगड़ गई और उन्हें लगा कि अब वे शायद ही जिंदा रह पाएँगे तो उन्होंने अपने सेक्रेटरी को बुलवाकर कोर्ट के एक वकील को बुलाने का आदेश दिया। वकील के आने पर उन्होंने डॉक्टरों के सामने ही अपनी वसीयत लिखवाई—मैं जॉर्ज बर्नार्ड शॉ शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरी अंतिम इच्छा है कि जब मैं इस संसार से और अपने इस भौतिक शरीर से आजाद हो जाऊँ एवं जब मेरे शव को कब्रिस्तान ले जाया जाए तो उस वक्त मेरी शवयात्रा में प्रथम श्रेणी में पक्षी, द्वितीय में भेड़ें, मेमने, गायें और अन्य सभी तरह के चौपाये, तृतीय में पानी में रहने वाले जीव होंगे। इन जीवों के गले में एक विशेष कार्ड बँधा होगा। जिस पर अंकित होगा—हे प्रभु! हमारे हितचिंतक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ पर दया करना, जिसने दूसरे जीवों के प्राणों की रक्षा के लिए अपना जीवन निछावर कर दिया।

कहा जाता है कि अपनी इस इच्छा को लिखवाने के बाद जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने प्राण-त्याग दिए और उनकी अंतिम इच्छा को ध्यान में रखते हुए उन्हें कब्रिस्तान तक पशु-पक्षियों के एक जुलूस के साथ पहुँचाया गया। दुनिया में जीव-जंतुओं के प्रति ऐसी संवेदना कम ही देखने को मिलती है, लेकिन ऐसे उदाहरण दुनिया के लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं।

हमें यदि मानवीय संवेदनाओं को जगाना है तो इसके लिए हमें नई शुरुआत करनी होगी। फिर से अपने हृदय-क्षेत्र की ऊसर भूमि को संवेदना, करुणा व प्रेम के जल से अभिसिंचित करना होगा, वं उसे उर्वर बनाना होगा। इसके लिए हमें दूसरों की पीड़ा को उस स्तर तक अनुभव करना होगा जैसे वह पीड़ा हमारी व्यक्तिगत हो। जब दूसरों की पीड़ा-परेशानी हमें अपनी पीड़ा व परेशानी के समान लगती है तब उस पीड़ा के निवारण

के लिए हृदय में सेवा के भाव स्वत: ही उमड़ पड़ते हैं। दूसरों की पीड़ा व कष्ट हमें महसूस नहीं होते; क्योंकि उन्हें हम अपना नहीं मानते, लेकिन जब वही पीड़ा व कष्ट हम स्वयं भोगते हैं, तब कहीं जाकर हमें उन कष्टों का एहसास होता है, जो दूसरे भोगते हैं।

आज दुनिया में लोगों की पीड़ा व परेशानियाँ बढ़ी हैं, पर उनका निवारण नहीं हो पा रहा है; क्योंकि लोगों में संवेदनशीलता की कमी हो गई है। लोगों की पीड़ा दूर करने के लिए सरकार प्रयास करती है, लेकिन वह प्रयास और उसका लाभ लोगों तक नहीं पहुँच पाता; क्योंकि उस लाभ को लोगों तक पहुँचाने वाले लोग संवेदनहीन बनकर अपनी जेबें भर लेते हैं। भ्रष्टाचार को बढ़ा देते हैं और सेवा का मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं। इससे किसी का भला नहीं होता। उन लोगों का भी भला नहीं होता, जो भलाई के मार्ग में रोड़ा अटकाकर खड़े होते हैं, बल्कि देर-सबेर जब उनकी कलई खुलती है और हकीकत सामने आती है तो उन्हें उसकी दुगनी भरपाई करनी पड़ती है।

सेवा का मार्ग बहुत सरल है, किंतु यह सेवा तभी सार्थक रंग लाती है, जब इसके साथ संवेदना जुड़ती है और संवेदना तभी लोगों के मन में जगती है, जब दूसरों की पीड़ा हमें अपनी प्रतीत होती है। जब दूसरों की परेशानी हमें अपनी परेशानी महसूस होती है, तब सेवा के लिए उठे हाथ पीछे नहीं होते। तब सेवा के लिए आगे बढ़े कदम पीछे नहीं लौटते। जिस दिन मानव समाज इस संवेदना को महसूस करने लगेगा तब हमारे देश व समाज की दशा व दिशा, दोनों ही बदल जाएँगी और तब हमारे आस-पास अच्छे कार्यों की, अच्छे लोगों की बाढ़ आ जाएगी और फिर इस सेवा-संवेदना के कारण धरती पर ही स्वर्ग की सुखद अनुभूति होने लगेगी। ❑

हुसैन नामक एक बड़ा जौहरी था। एक समय वह व्यापार हेतु रामनगर गया। वहाँ उसकी मित्रता उस देश के मंत्री से हो गई। एक दिन मंत्री के साथ वह भ्रमण पर निकला था तो रास्ते में उसे एक विशाल तंबू नजर आया और एक सुसज्जित सेना उस तंबू की परिक्रमा कर रही थी। फिर क्रमश: श्वेत वस्त्र पहने विद्वान पुरुष, दो-तीन सौ सेवक जवाहरात भरे थाल के साथ और फिर अंत में राजा आए और ये सब भी परिक्रमा करके चले गए।

जौहरी ने मंत्री से इस अद्भुत लगने वाली घटना के बारे में जिज्ञासा की तो मंत्री ने बताया कि राजा का एक अत्यंत गुणवान पुत्र था। राजा उससे अत्यधिक स्नेह करता था। अकस्मात् उसका निधन हो गया। इस तंबू में उसकी कब्र बनी है। प्रतिवर्ष राजकुमार की मृत्यु-तिथि के दिन राजा सेना व परिवार सहित यहाँ आता है और प्रदक्षिणा करके लौट जाता है।

हुसैन ने मंत्री से पूछा—"तो क्या राजा अपने पुत्र की कब्र पर कुछ चढ़ाता नहीं।" मंत्री ने उत्तर दिया—"नहीं! इस पूरे प्रयोजन का उद्देश्य मात्र इतना है कि आत्मा की अमरता के समक्ष सेना की वीरता, विद्वानों का ज्ञान और पूरे राज्य की धन-संपत्ति सब व्यर्थ हैं।" ये सब देकर भी मनुष्य आयु नहीं प्राप्त कर सकता। यह सुनकर हुसैन के मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह सब छोड़कर भगवद्भजन में निरत हो गया।

समस्या को सामना ही है उसका समाधान

जीवन में समस्याओं का आना स्वाभाविक है। इनका साहस एवं सूझ के साथ सामना कर इनसे पार निकलने का तथा इनके समाधान का मार्ग खोजा जा सकता है। समस्याओं को एक समय तक टालना इनके समाधान की प्रक्रिया का अंग हो सकता है, लेकिन समस्या को हमेशा टालते रहने की प्रवृत्ति तथा इससे बचने की कवायद अंतत: कई समस्याओं का कारण बनती है और विकराल रूप ले लेती है तथा पूरे जीवन को प्रभावित करती है।

व्यक्ति की जीवनशैली में बरती गई छोटी-छोटी लापरवाहियाँ तथा गलत आदतें समय के साथ कई तरह के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का कारण बनती हैं। यदि समय रहते जीवनशैली में वांछित सुधार नहीं किया गया तो एक दिन ये गंभीर एवं असाध्य रोगों का रूप ले सकती हैं, जिनके भयंकर दुष्परिणामों को आएदिन लोगों को भुगतते देखा जा सकता है। यदि प्रारंभ में ही इनका सामना किया होता तो यह स्थिति ही न आई होती। यही जीवन के अन्य क्षेत्रों में बरती गई लापरवाही के संदर्भ में भी सत्य है।

जीवन की समस्याओं के बिगड़ने पर फिर ये व्यक्ति के पूरे समय, ऊर्जा और ध्यान को नियंत्रित कर लेती हैं तथा गहन तनाव, विषाद और दु:ख का कारण बनती हैं। तब समझ आता है कि यदि समय रहते समस्या के निदान के लिए उपचार किए होते तो यह नौबत न आई होती। जो भी हो समस्या से निपटारे की उपयुक्त विधि का पालने करते हुए इससे निपटा जा सकता है।

सबसे पहले तो समस्याओं की पहचान की जाए और यह स्वीकार किया जाए कि इनका अस्तित्व है। इन्हें स्वीकारने पर ही इनके स्वरूप पर विचार संभव होता है तथा इनके समाधान की दिशा में आगे कदम बढ़ सकते हैं। समय रहते इस पर विचार करने से समाधान सरल हो जाता है अन्यथा ये आगे चलकर काल्पनिक दैत्य का भयावह रूप धारण कर लेती हैं, जिनका सामना करने में व्यक्ति को भय लगता है।

साहसपूर्ण सामना करने पर समस्या की विकरालता सिमट जाती है। जब इसका सीधा सामना किया जाता है, इसकी आँखों में आँखें डालकर काम किया जाता है, तो पता चलता है कि इसका सामना वास्तव में उतना जोखिम भरा नहीं था, जितना कि वह कल्पना में प्रतीत हो रहा था। इससे बचने व दूर भागने की कवायद में यह अपना विकराल रूप धारण किए हुए थी, जिसका कोई वास्तविक ठोस आधार नहीं था।

इस तरह यदि हमारा जीवन आशाजनक सुख-संतोष एवं प्रसन्नता से भरा नहीं है तो आत्मावलोकन करते हुए ज्ञात कर सकते हैं कि इसके मूल में वो क्या समस्याएँ हैं, जिनका सामना करने से हम बच रहे हैं—जो हमारे भय व पलायन का पोषण पाकर विकराल मानसिक द्वंद्व, भय तथा आशंकाओं का कारण बनी हुई हैं। इनका एक-एक कर पूरे साहस एवं सूझ-बूझ के साथ सामना करते हुए, इनकी तह तक जाते हुए, इनका समूल नाश किया जा सकता है और एक सुखी जीवन का आधार तैयार किया जा सकता है। ❑

बुझते दीपक को देखकर अँधेरे ने ठहाका लगाया और कहा—''क्यों आ गया न तेरा अंत। छोटा-सा दीपक, और अंधकार को चुनौती देने चला था।'' दीपक बोला—''बंधु! अंत तो इस संसार में हरेक का निश्चित है। यदि हमेशा उजाला नहीं रहता तो हमेशा अँधेरा भी नहीं रहता। प्रश्न इस बात का है कि हमने किस उद्देश्य के लिए जीवन जिया और अंत में कैसी भावनाएँ रखीं। मुझे संतोष है कि मैं औरों के हित जिया और औरों के हित मरा।'' सत्य में यही जीवन का उद्देश्य भी है।

स्वस्थ जीवनशैली के साथ समग्र चिकित्सकीय दृष्टिकोण भी है जरूरी

कोरोना वायरस जनित कोविड-19 महामारी के खिलाफ आज पूरी दुनिया संघर्ष कर रही है। इस महामारी ने विकासशील व विकसित देशों के सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय परिदृश्य को बदलकर रख दिया है। इस महामारी ने मानो पूरी दुनिया में एक आपातकालीन स्थिति पैदा कर दी हो। तभी तो लोगों को अपनी जीवनशैली बदलने को मजबूर होना पड़ा है। इस महामारी की चपेट में आकर दुनिया भर में अब तक लाखों लोग काल-कवलित हो चुके हैं और लाखों लोग अभी भी जिंदगी और मौत के बीच संघर्ष कर रहे हैं।

कोविड-19 के पूर्ण निदान के लिए दुनिया भर के वैज्ञानिक नित नए शोध करने में जुटे हुए हैं। एलोपैथी, होम्योपैथी, सिद्ध, यूनानी एवं अन्य चिकित्सा पद्धतियों के अंतर्गत इसके निदान ढूँढ़े जा रहे हैं, पर वैज्ञानिकों को भी अब तक कोई वांछित व आशातीत सफलता नहीं मिल सकी है। अभी हाल ही में भारत में दो कोरोना वैक्सीन कोविशील्ड और कोवैक्सीन को इस्तेमाल की अनुमति मिली है, पर जब तक कोविड-19 के पूर्ण निदान हेतु कोई कारगर औषधि नहीं आ जाती तब तक विविध चिकित्सा-पद्धतियों के अंतर्गत नित नए शोध भी जारी रहेंगे।

दुनिया भर में कई चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। हर चिकित्सा-पद्धति की अपनी विशेषताएँ भी हैं और सीमाएँ भी। उदाहरणस्वरूप एलोपैथी रोग के तात्कालिक लक्षण के आधार पर रोग के प्रबंधन कर केंद्रित होती है। एलोपैथी की औषधि रोगी को तुरंत राहत देती है। किसी रोग विशेष में, दुर्घटना विशेष में किसी अंग विशेष की तुरंत शल्य क्रिया करनी हो तो इसमें एलोपैथी चिकित्सा सबसे जल्दी सहायता करती है।

अब तक विज्ञान की नई-नई तकनीकें विकसित होने के कारण इसमें लेजर का प्रयोग व अणु तकनीक का भी इस्तेमाल होने लगा है। इस पद्धति में इंजेक्शन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके परिणाम शीघ्र सामने आ जाते हैं और इसके द्वारा मनुष्य को तत्काल राहत भी मिलती है।

इस प्रक्रिया से कई रोगों पर तुरंत अंकुश लगाने में सहायता मिलती है। नई-नई विकसित तकनीकों के माध्यम से अब हर अंग-अवयव की तुरंत स्कैनिंग की जाने लगी है। सीटी स्कैन, अल्ट्रासाउंड, एक्सरे आदि तकनीकों के माध्यम से सही चिकित्सा करने में मदद मिलती है, पर इस चिकित्सा-पद्धति की कुछ सीमाएँ भी हैं। वे हैं—दवाइयों का प्रतिकूल प्रभाव या साइड इफेक्ट। एक तो दवाइयाँ रोग को दबा देती हैं, इनसे रोग निर्मूल नहीं हो पाता, साथ ही कालांतर में वह किसी अन्य रोग को जन्म भी दे देता है।

इस चिकित्सा-पद्धति के तहत शरीर का उपचार तो संभव है, पर मन का नहीं। कई बीमारियों की जड़ शरीर में न होकर मन में होती है, व्यक्ति के अचेतन मन में होती है। अत: नानाविध मानसिक व मनोकायिक रोगों का पूर्ण निदान एलोपैथी पद्धति से संभव नहीं। मन का परिष्कार कर ही मानसिक व मनोकायिक रोगों का पूर्ण निदान संभव है।

वहीं प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों में एक प्रमुख चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद औषधीय पौधों पर आधारित है। आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति रोग को दबाने या उसे शरीर में दफन कर तात्कालिक राहत देने के बजाय रोग की रोक-थाम व रोग को उत्पन्न करने वाले मूल कारण को निष्काषित करने पर केंद्रित होती है। चूँकि आयुर्वेद 'वात-पित्त-कफ' के असंतुलन को रोग का कारण मानता है, इसलिए यह 'वात-पित्त-कफ' को संतुलित कर रोगमुक्त होने या करने के सिद्धांत पर कार्य करता है।

वहीं प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति शरीर में टॉक्सिन्स (विजातीय तत्त्वों) के संग्रह को रोग का कारण मानती है। अत: यह शरीर में जमा टॉक्सिन्स एवं अन्य विषैले विजातीय तत्त्वों को निष्काषित करने पर केंद्रित होती है। चूँकि मानव शरीर पंचतत्त्वों से मिलकर बना है, इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा—मिट्टी, जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि प्राकृतिक तत्त्वों के प्रयोग व सेवन के द्वारा शरीर से विजातीय तत्त्वों का निष्कासन करने के द्वारा रोग की रोक-थाम व उसकी चिकित्सा पर केंद्रित होती है।

आयुर्वेद व प्राकृतिक चिकित्सा एक ही चिकित्सा पद्धति की दो शाखाएँ हैं। इस पद्धति का आयुर्वेद से निकटतम संबंध है। इसे बहुधा औषधिविहीन उपचार-पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति के उपचार से व्यक्ति के शरीर में कोई दुष्प्रभाव भी नहीं होता।

रोग का मूल कारण समाप्त हो जाने से रोग जड़सहित दूर हो जाता है। साथ ही व्यक्ति की जीवनीशक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है, जिससे वह तुरंत किसी रोग की चपेट में नहीं आ पाता और यदि आ भी जाए तो अपनी बढ़ी-चढ़ी जीवनीशक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता के कारण रोगी शीघ्र रोगमुक्त हो सकता है।

होम्योपैथी चिकित्सा-पद्धति 'समरूपता के सिद्धांत' पर आधारित है, जिसके अनुसार औषधियाँ उन रोगों से मिलते-जुलते रोगों को दूर कर सकती हैं, जिन्हें वे उत्पन्न कर सकती हैं। औषधि की रोगहरण शक्ति रोग के लक्षणों के समान, किंतु उनसे प्रबल होनी चाहिए। अत: रोग अत्यंत निश्चयपूर्वक जड़ से, अविलंब और सदा के लिए नष्ट और समाप्त उसी औषधि से हो सकता है, जो मानव शरीर में रोग के लक्षणों से प्रबल और लक्षणों से अत्यंत मिलते-जुलते सभी लक्षण उत्पन्न कर सके।

इस उपचार-पद्धति में रोग लक्षण और औषधि लक्षण में जितनी अधिक समानता होगी, रोगी के स्वस्थ होने की संभावना उतनी ही अधिक होगी। सिद्ध औषधि प्रणाली आयुर्वेद से ही मिलती-जुलती उपचार-पद्धति है। यह आकस्मिक मामलों को छोड़कर सभी प्रकार के रोगों का इलाज करने में सक्षम है।

इस उपचार-पद्धति का मानना है कि भोजन ही औषधि है और औषधि ही भोजन है। सिद्ध उपचार-पद्धति के अनुसार सात तत्त्व अर्थात प्लाविका, रक्त, मांसपेशी, वसा, अस्थि, स्नायु, तथा शुक्र मानव शरीर के शारीरिक क्रिया एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों के आधार हैं। ये सातों तत्त्व—तीन तत्त्वों अर्थात वायु, अग्नि (या ऊर्जा) तथा जल द्वारा सक्रिय होते हैं।

माना जाता है कि सामान्यत: ये तीनों तत्त्व हमारे शरीर में एक विशेष अनुपात में होते हैं। जब हमारे शरीर में इन तीनों तत्त्वों का संतुलन बिगड़ता है, तब विभिन्न रोग होते हैं। हमारे शरीर में इन तत्त्वों को प्रभावित करने वाले कारक हैं—पथ्य या आहार, शारीरिक गतिविधियाँ, पर्यावरण संबंधित तथ्य एवं तनाव।

इस उपचार-पद्धति में धातुओं तथा खनिजों का प्रयोग प्रमुख है। इस उपचार का ध्येय शरीर में तीन तत्त्वों का संतुलन बनाए रखकर सात तत्त्वों को सामान्य स्थिति में रखना है, ताकि शरीर एवं मस्तिष्क स्वस्थ रह सकें।

यूनानी चिकित्सा-पद्धति को भारतीय चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद के करीब माना जाता है। इस उपचार-पद्धति में वात, पित्त, कफ की प्रधानता के आधार पर रोग के लक्षणों का पता किया जाता है। मानव शरीर में अग्नि, जल, पृथ्वी और वायु की प्रधानता का मानव शरीर पर प्रभाव के आधार पर रोग की पहचान व उसका निदान किया जाता है।

उसी प्रकार एक्यूप्रेशर व मर्म चिकित्सा भी आज एक वैकल्पिक चिकित्सा-पद्धति के रूप में उभरे हैं, जिनका लाभ जनसामान्य को मिल रहा है। ये शरीर के विभिन्न मर्म बिंदुओं को दबाकर रोग की पहचान व निदान करती हैं। वहीं आज योग भी एक वैकल्पिक चिकित्सा-पद्धति के रूप में उभरकर सामने आया है। योग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित एक प्रमुख भारतीय दर्शन है। योग मूलत: आत्मा एवं परमात्मा के मिलन की प्रक्रिया है। यह आत्मसाक्षात्कार व ईश्वरसाक्षात्कार का दर्शन है।

विभिन्न वैज्ञानिक शोधों के उपरांत जब से इसके चिकित्सकीय लाभ सामने आए हैं; तभी से योग को एक समग्र स्वास्थ्य चिकित्सा-पद्धति की प्राप्ति के साधन के रूप में पूरी दुनिया में मान्यता मिलने लगी है। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा वर्ष 2015 से हर वर्ष 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाए जाने की घोषणा वस्तुत: योग के चिकित्सकीय पक्ष का ही सम्मान है।

शरीर, मन व आत्मा के सम्यक सम्मिलन से ही मनुष्य पूर्णत: स्वस्थ रह सकता है। योग मन, शरीर व आत्मा के सम्यक सम्मिलन में सहायक है। यह शरीर, मन व आत्मा तीनों स्तर पर कार्य करता है। योग शरीर, मन व आत्मा तीनों के परिष्कार पर केंद्रित है।

योग मुख्यत: एक समग्र जीवन-पद्धति है। इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि आदि अष्टांग योग के अभ्यास से व्यक्ति के सामाजिक तथा व्यक्तिगत आचरण में सुधार आता है। आसन एवं

प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में ऑक्सीजनयुक्त रक्त का भली भाँति संचार होने से शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार होता है, इंद्रियाँ संयमित होती हैं तथा मन को शांति मिलती है। प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ी-शुद्धि होती है, साथ ही मन की चंचलता भी मिटती है। कुंजल, धौति, लघु शंख प्रक्षालन आदि क्रियाएँ शरीर से विजातीय तत्त्वों के निष्कासन में सहायक हैं।

कई बार विभिन्न औषधियों के सेवन से भी व्यक्ति के स्वास्थ्य में कोई सुधार होता नहीं दीखता। वस्तुत: इसका कारण यह होता है कि व्यक्ति के रोग के कारण उसके शरीर में नहीं, बल्कि उसके मन में निहित होते हैं। अस्तु इलाज उसके शरीर का नहीं, बल्कि मन का होना चाहिए।

वस्तुत: व्यक्ति के द्वारा पूर्वजन्म में या इस जन्म में किए गए बुरे, अशुभ या पापकर्मों के संस्कार उसके अचेतन मन में समाये रहते हैं। कई दमित इच्छाएँ, वासनाएँ, अचेतन मन में दफन होती हैं, जिनके कारण व्यक्ति के मन में आत्मग्लानि, हीन भावना, अपराधबोध, भय, घृणा, ईर्ष्या आदि नकारात्मक भावनाएँ भरी हुई होती हैं।

इन नकारात्मक भावनाओं के कारण उनमें कुंठा, चिंता, अवसाद, तनाव आदि मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। फिर मानसिक व्याधियाँ मन से शुरू होकर काया (शरीर) में प्रकट होने लगती हैं, जिन्हें हम मनोदैहिक अथवा मनोकायिक रोग कहते हैं। ध्यान व भक्ति के निरंतर अभ्यास से व्यक्ति के अचेतन का परिष्कार होने लगता है, जिससे वह शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक रूप से स्वस्थ होने लगता है।

तब उसमें करुणा, प्रेम, संवेदना आदि उच्चतर भावनाएँ विकसित होने लगती हैं, जिनसे वह मानसिक व आत्मिक रूप से प्रफुल्लित रहने लगता है। परिणामस्वरूप उसमें आशा व उत्साह का संचार होने लगता है। उसे एक नूतन जीवन-दृष्टि मिल जाती है, जिससे वह कठिन-से-कठिन परिस्थितियों व चुनौतियों का बहादुरीपूर्वक सामना कर पाता है। उसकी जीवनीशक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है।

आज व्यक्ति विकृत जीवनशैली के कारण ही नानाविध व्याधियों से पीड़ित है। इसका एक ही निदान है और वह है आयुर्वेदिक जीवनशैली, प्राकृतिक जीवनशैली, यौगिक जीवनशैली, आध्यात्मिक जीवनशैली अर्थात समग्र जीवनशैली।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हर चिकित्सा-पद्धति की अपनी विशेषताएँ भी हैं और सीमाएँ भी। किसी एक चिकित्सा-पद्धति के भरोसे रहने और अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में सन्निहित विशेषताओं की उपेक्षा करने के बजाय हमें सभी चिकित्सा-पद्धतियों में सन्निहित विशेषताओं का लाभ उठाना चाहिए; जिससे हम समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकें।

बुखार से तपता हुआ व्यक्ति भला आसन, प्राणायाम, ध्यान, भजन आदि कैसे कर सकता है ? यदि किसी दुर्घटना में किसी व्यक्ति का हाथ कट गया हो, उसके शरीर से रक्त बह रहा हो तो उसकी अविलंब शल्य क्रिया करने के लिए एलोपैथी ही सर्वोत्तम है।

उस अवस्था में व्यक्ति आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास तो नहीं कर सकता है। हाँ! एलोपैथी के उपचार के साथ-साथ उसे आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, होम्योपैथी आदि उपचारों का सहारा अवश्य दिया जा सकता है, जिससे उसकी जीवनीशक्ति व रोगप्रतिरोधक क्षमता बनी रहे और वह शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सके और साथ ही एलोपैथिक औषधियों का प्रतिकूल प्रभाव भी समाप्त हो सके। हाँ! यदि कोई आकस्मिक कारण नहीं है तो हम सीधे आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, योग आदि उपचार प्रणालियों का सहारा ले सकते हैं।

कोविड-19 भी एक आकस्मिक महामारी है, जिसके पूर्ण निदान के लिए एलोपैथी के साथ-साथ अन्य उपचार-पद्धतियों का सहारा लिए जाने की आवश्यकता है। कोविड-19 से मरने वाले लोगों में अधिकांश ऐसे लोग थे, जो मधुमेह, रक्तचाप, यकृत एवं श्वसनसंबंधी बीमारियों से पूर्व से पीड़ित थे या जो अवसाद, तनाव, कुंठा, अनिद्रा आदि व्याधियों से भी पीड़ित थे या फिर जिनकी जीवनीशक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता कम से कमतर थी।

ऐसे लोग शीघ्रता से कोरोना वायरस की चपेट में आ गए, पर जिनकी जीवनीशक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी थी, ऐसे लोग या तो कोरोना वायरस की चपेट में आए नहीं और यदि आ भी गए तो अपनी बेहतर जीवनीशक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता के कारण शीघ्र स्वस्थ हो सके।

आज विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों के आधार पर कोरोना वायरस के पूर्ण निदान को लेकर शोधपत्र सामने आ रहे हैं। इसी बीच एक ऐसा ही शोधपत्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शोध वैज्ञानिकों के द्वारा भी लिखा गया है, जिसकी चर्चा वैज्ञानिक एवं शोध जगत में गंभीरता के साथ हो रही है।

अकादमी ऑफ प्लांट साइंसेज, भारत के द्वारा प्रकाशित 'एडवान्सेज इन प्लांट साइंसेज' नामक अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका में 'होलिस्टिक थेरेप्युटिक ऐपरोचेज फॉर क्योरिंग नोवल कोरोना वायरस—एन ओवरव्यू' शीर्षक से प्रकाशित अपने शोधपत्र में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के औषधीय पादप विज्ञान विभाग में कार्यरत शोध वैज्ञानिक व सहायक प्राध्यापक डॉ. ललित राज सिंह व शोध वैज्ञानिक व प्राध्यापक डॉ. कर्णसिंह का मानना है कि कोविड-19 एवं अन्य बीमारियों के पूर्ण निदान हेतु आज एक समग्र चिकित्सकीय दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है।

किसी एक चिकित्सा-पद्धति के भरोसे रहकर अन्य चिकित्सा-पद्धतियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखने के बजाय उनमें सन्निहित विशेषताओं से लाभ उठाए जाने की आवश्यकता है। कोविड-19 महामारी के निदान हेतु एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, योग आदि चिकित्सा-पद्धतियों के उपयुक्त सम्मिलन तैयार किए जाएँ; क्योंकि किसी एक चिकित्सा-पद्धति के द्वारा इसका तात्कालिक, समुचित व पूर्ण निदान संभव नहीं है। साथ ही अपने शोधपत्र में उन्होंने कोविड-19 के निदान में मुख्य रूप से औषधीय पौधों की भूमिका पर प्रकाश डाला है।

शोध वैज्ञानिकों का मानना है कि अडूसा, मोथा, गिलोय, लिसोड़ा, कालमेघ, कुचला, सदाबहार आदि सात ऐसे औषधीय पादप हैं, जिनके फलों, पत्तियों, छिलकों, रसों, पाउडर आदि के विभिन्न रूपों में प्रयोग व सेवन से न सिर्फ कोविड-19 के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है, बल्कि उसका प्रभावी निदान भी किया जा सकता है।

अडूसा में ऐंटी-बैक्टीरियल व ऐंटी-वायरल गुण हैं। इस कारण यह इसके संक्रमण को रोकने में कारगर है। यह निमोनिया, बुखार, खाँसी आदि में भी लाभकारी है।

मोथा में जीवनीशक्ति बढ़ाने की क्षमता है। यह कोविड-19 के शिकार उन रोगियों के लिए लाभकारी है, जो उच्च रक्तचाप, मधुमेह व किडनी संबंधी बीमारियों से भी पीड़ित हैं।

गिलोय में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने की अद्भुत क्षमता है। यह रक्तशोधक होने के साथ-साथ थकान आदि मिटाने में भी सहायक है। इसे कोविड-19 के शिकार उन रोगियों को दिया जा सकता है, जो हृदय संबंधी रोगों अथवा मधुमेह आदि से भी पीड़ित हैं। यह मनोकायिक औषधि के रूप में चर्चित है।

लिसोड़ा सूखी खाँसी, निमोनिया आदि फेफड़ों से संबंधी बीमारियों के निदान में सहायक है।

कालमेघ रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली एक अद्भुत औषधि के रूप में विख्यात है। इसका सेवन यदि गिलोय के साथ किया जाए तो यह लिवर को पुष्ट करने के साथ-साथ जीवनीशक्ति वर्द्धक व रक्तशोधक भी है। यह पाचन संबंधी विकारों को दूर करने के साथ-साथ मलेरिया बुखार में भी लाभकारी है। यह मधुमेह व हृदय संबंधी रोगों से पीड़ित कोविड-19 के शिकार रोगियों के लिए सुरक्षित है।

वहीं कुचला एक प्रभावी नर्वटॉनिक एवं जीवनीशक्ति वर्द्धक औषधि के रूप में कार्य करता है। यह श्वसन संबंधी सभी प्रकार के रोगों में लाभकारी है।

वहीं सदाबहार एक मधुमेहनाशक औषधि के रूप में प्रभावी है। इसके अतिरिक्त इसका प्रभाव यकृत पर भी पड़ता है।

इस प्रकार आज कोविड-19 के कारगर निदान हेतु ही नहीं, वरन समग्र स्वास्थ्य के लिए भी एक समग्र चिकित्सकीय दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा आदि के समग्र स्वास्थ्य संबंधी सिद्धांतों को अपनी जीवनशैली में समाहित करने की एवं समग्र जीवनशैली अपनाने की आवश्यकता है।

खाना-पीना, सोना-जागना, चिंतन, चरित्र, व्यवहार आदि सभी क्रियाएँ प्राकृतिक क्रियाओं के प्रतिकूल नहीं, वरन अनुकूल हों, तभी हम समग्र स्वास्थ्य को पाकर जीवन को खुशियों व आनंद से भर सकते हैं। सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ एकदूसरे की पूरक व सहयोगी के रूप में एक प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं और तभी इनका समुचित लाभ पूरी विश्व मानवता को मिल सकता है। ❑

गायत्री योग का प्रवर्तन

विगत अंक में आपने पढ़ा कि रामचरितमानस के आधार पर जनमानस को प्रगतिशील प्रेरणा देने के उद्देश्य से परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज में सन् 1975 के पूर्वार्द्ध से चल रहे रामायण के सत्रों के अगले चरण में रामकथा के प्रतिनिधि ग्रंथ वाल्मीकि रामायण पर प्रवचन करने वाले वानप्रस्थी तैयार करने की योजना बनाई। इस हेतु संस्कृत साहित्य के प्रति रुझान रखने वाले एक साधक को रामकथा के संदर्भों और प्रसंगों के संचयन का कार्यभार सौंपा गया। पूज्य गुरुदेव के संरक्षण एवं मार्गदर्शन में इस कल्याणकारी प्रयोजन में जुटे साधक को अपनी दैनिक गायत्री-उपासना के मध्य बड़े विलक्षण अनुभव हुए।

गंभीर भाव समाधि की अवस्था में भावनेत्रों से उन्होंने देखा कि गंगातट पर अवस्थित ऋषि विश्वामित्र सिद्धाश्रम के नाम से प्रसिद्ध उस स्थान की महिमा को राजकुमार के वेश में साथ आए भगवान राम एवं लक्ष्मण को बता रहे थे कि इसी स्थान पर भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर तीनों लोकों को राजा बलि के आधिपत्य से बचाया था। भगवान विष्णु के वामन अवतार की इस स्थान पर दीर्घकाल तक रही उपस्थिति ने ही इस क्षेत्र की पवित्रता को कायम रखा था। दिव्यदर्शन के साक्षी बने साधक ने आनंदपूर्वक अपनी अनुभूति वंदनीया माताजी को कह सुनाई तो इस उपलब्धि का श्रेय पूज्य गुरुदेव की कृपा को देतीं वंदनीया माताजी ने उन साधक को अपना आशीष प्रदान किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

सिद्धाश्रम की यात्रा

कार्यकर्त्ता ने समझा कि माताजी ने उनके अनुभव के बारे में बता दिया होगा। गुरुदेव ने आगे कहा—"ध्यानावस्था में तुमने जो दृश्य देखा, वह सिद्धाश्रम के एक अंश की झलक है। उसका विस्तार और गठन तो वहीं जाकर देख सकोगे।" साधक ने कहा—"वहाँ जाने के लिए जैसी पात्रता चाहिए, वह मुझमें कहाँ है गुरुदेव ?" यह बात अत्यंत ही विनय और प्रणत भाव से कही गई थी। अपनी असमर्थता जताते हुए यह विश्वास भी कायम था कि गुरुदेव उस स्थान पर जाने की बात कह रहे हैं तो उसके लिए आवश्यक सामर्थ्य भी वही प्रदान करेंगे। कार्यकर्त्ता इस विषय में उठ रहे संकल्प-विकल्प में उलझता, उससे पहले ही गुरुदेव ने जैसे उसे रोक दिया। उन्होंने कहा—"जिस सिद्धाश्रम की झलक तुमने देखी है, वहाँ इस स्थूलशरीर से नहीं जाया जा सकता। पंचतत्त्वों से बनी इस काया को सिद्धाश्रम से पहले ही छोड़ देना पड़ता है। साधना-उपासना और योग द्वारा इतनी ऊर्जा संगृहीत करनी होती है कि अपने अस्तित्व का पाँचवाँ आयाम आत्मशरीर भली भाँति विकसित हो जाए और वहाँ की यात्रा संपन्न हो सके।

"गुरुदेव कह रहे थे कि कुछ विभूतियाँ उस स्थान की सशरीर यात्रा करने में भी समर्थ होती हैं, पर वे विरल होती हैं। मोक्ष या निर्वाण को प्राप्त ये आत्माएँ भवबाधाओं से मुक्त होती हैं, इसलिए कहीं भी आ-जा सकती हैं। लेकिन उस अवस्था को प्राप्त करने से पहले साधना और गुरुकृपा का आश्रय मिलने पर उन्हें भी आत्मशरीर या वायवीय शरीर का ही सहारा लेना पड़ता है।"

कहकर गुरुदेव मौन हुए। उन्होंने साधक की ओर देखा। उन्हें अपनी ओर देखता पाकर साधक के शरीर में जैसे विद्युत की तरंगें दौड़ने लगीं। यों उन कार्यकर्त्ता ने गुरुदेव को अपनी ओर देखते हुए पहले भी कई बार अनुभव किया

था। बहुधा वह दृष्टिपात सामान्य ही हुआ करता था। चलते-फिरते, काम-काज करते हुए जैसे कोई वरिष्ठ जन अपने सहयोगियों को निहारते हैं, उसी तरह का भाव उनके देखने में महसूस होता था।

कभी-कभार सुबह प्रणाम के समय अथवा पर्व प्रसंगों में या ध्यान-कक्षाओं में अथवा जन्मदिन आदि के अवसर पर गुरुदेव की दृष्टि से ऊर्जा का प्रवाह आता अनुभव होता था और साधक को वह प्रवाह अपने भीतर समाविष्ट होने जैसी अनुभूति होती थी। लेकिन इस बार गुरुदेव की दृष्टि में अलग ही तरह का तेज था। उस तेज से लगा कि शीत में काँपते हुए शरीर को जैसे अचानक अग्नि का सान्निध्य मिल गया हो और ठिठुरन दूर होने लगी हो। अगले ही पल कुछ ऐसा लगा कि अँधेरी रात छँट गई है और पूर्व दिशा में भगवान सविता देव अपने प्रखर तेज से उदित हो रहे हैं। उनकी किरणें धरती पर पहुँच रही हैं, उन किरणों में अपना अस्तित्व ओस की बूँदों की तरह लुप्त होता जा रहा है।

कुछ क्षण पहले जहाँ खड़े होकर गुरुदेव से अपनी बात कही जा रही थी, वहाँ सिर्फ काय-कलेवर विद्यमान है। मिट्टी के पुतले की तरह अविचल और मौन। अनुभव हो रहा था कि अपनी ही प्रतिमा वहाँ खड़ी है। संग्रहालय में सजी, प्रदर्शन के लिए रखी गई मूर्तियों की तरह साफ-सुथरी और मृण्मय आकृति। फिर गुरुदेव की ओर देखा। उनका आसन खाली था। उनकी आवाज भर सुनाई दी— ''चलो। मेरे साथ चलो। जहाँ हम चल रहे हैं, वहाँ सिर्फ देखते रहना। जरूरी लगे तो पूछ भी लेना, लेकिन कोई तर्क-वितर्क मत करना।''

इस उद्‌बोधन को सुनकर साधक ने उस दिशा में देखा तो पाया कि आकाश में एक स्वर्णिम पथ निर्मित हो चला है। जिस तेजी से वह बनता दिखाई दिया था, उसे प्रकट होना ही कहेंगे। स्वयं का अस्तित्व एक बालक की तरह लगा, जो अपने अभिभावक का हाथ पकड़कर किसी यात्रा पर रवाना हो रहा हो। कहाँ जाना है, यह जानना भी उस बालक ने जरूरी नहीं समझा। अपने अभिभावक, संरक्षक और मार्गदर्शक के निर्देश पर अवलंबित होकर उन्हीं के साथ-साथ चलना जैसे अपनी नियति हो।

यात्रा कितनी देर चली, कुछ नहीं पता। मार्ग में आस-पास कोई वृक्ष-वनस्पति, जीव-जंतु, आबादी या नदी-नद और पहाड़ हैं, इसका भी कोई आभास नहीं हुआ। साधक अपनी मार्गदर्शक सत्ता के साथ उस स्वर्णिम प्रकाश-पथ पर बढ़ता चला जा रहा था। बीच-बीच में एकाध पल के लिए ध्यान बँट जाता तो दूर-दूर तक आकाश के सिवा कुछ नहीं दिखाई देता। फिर मार्ग पर दृष्टि जाती तो गुरुदेव के आगे बढ़ते हुए पैरों और उनके पीछे अपने चलते जाने वाले पगों के अलावा कुछ नहीं दिखाई देता। नीचे भी निस्तब्ध बिखरी हुई आभा के समान कुछ जान नहीं पड़ रहा था। लगता था जैसे दिग्दिगंत में शून्य ही व्याप्त है। न कहीं धरती दिखाई देती थी और न ही ग्रह-नक्षत्र। बीच-बीच में कई बार मन में प्रश्न उठा कि अपना गंतव्य क्या है ? किस दिशा में और कहाँ जाया जा रहा है। कहीं शरीर छूट तो नहीं गया और मार्गदर्शक सत्ता उस अशरीरी चेतना का मार्गदर्शन करती हुई आगे बढ़ती जा रही है।

मन में उठ रहे इस तरह के विचारों को विवेक, श्रद्धा और आस्था ने एक पल में झटककर अलग कर दिया। दृष्टि ने अपने आप को निहारा और गुरुदेव को भी। कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि शारीरिक सत्ता का लोप हो गया हो। चलने, देखने, स्पर्श करने के साथ एक अपरिचित संगीत भी सुनाई दे रहा था। फिर धीरे-धीरे गंध आने लगी। संगीत धीरे-धीरे स्पष्ट होता गया। इतना स्पष्ट कि प्रतीत हुआ वेदमंत्र गूँज रहे हैं। गंध भी स्पष्ट होने लगी, जैसे कहीं कोई महायज्ञ हो रहा है और उसमें दिव्य औषधियों की आहुतियाँ दी जा रही हैं।

स्वर और गंध के इस आभास से प्रेरित होकर साधक ने फिर अपने भीतर टटोलने की कोशिश की कि गंतव्य कहाँ है ? मन हुआ कि गुरुदेव से पूछ ही लिया जाए। यह विचार आया ही था कि गुरुदेव ने तत्क्षण कहा। साधक के प्रश्न करने की नौबत ही नहीं आई। सिद्धाश्रम चल रहे हैं। पूरे क्षेत्र की यात्रा तो नहीं हो सकेगी, वहाँ विद्यमान ऋषिसत्ताओं से साक्षात्कार के बाद ही वापस लौट चलेंगे।

गुरुदेव से मिले इस आश्वासन के बाद मन पूरी तरह निश्चिंत हो गया था। वैसे पहले भी कोई संदेह नहीं था। अविज्ञात और अपरिचय के प्रति सहज उत्सुकता को डर या चिंता का नाम दे लें तो अलग बात है। इस यात्रा में कितना समय लगा कुछ बोध नहीं हुआ, कितनी दूर आ गए यह भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। शरीर वायु से भी ज्यादा निर्भार प्रतीत हो रहा था। कभी-कभी तो लगता कि अपनी सत्ता सिर्फ प्रकाश की भाँति ही है। जो दिशा और समय को क्षण भर में तय कर कहीं-से-कहीं पहुँच जाती है। (क्रमशः)

नई पीढ़ी के निर्माण की पहल

शिक्षक बच्चों को निरंतर अच्छा इनसान बनाने की कोशिश में जुटे रहते हैं। उन्हें व्यावहारिक ज्ञान देने के साथ ही वे उनमें मुश्किलों से जीतने का हौसला भी भरते हैं। इसके लिए जरूरी नहीं है कि वे किसी शिक्षण संस्थान में अध्यापक ही हों। जिनके भीतर शिक्षक निवास करता है, वे अपनी जिम्मेदारियों के बीच भी बच्चों के जीवन को सँवारने का समय और अवसर निकाल ही लेते हैं। ऐसे कुछ प्रेरणादायी व्यक्तित्वों की कथाएँ निम्नांकित हैं।

वाराणसी के जिलाधिकारी योगेश्वर राम मिश्र, रुद्रप्रयाग (उत्तराखंड) के जिलाधिकारी मंगेश घिल्डियाल और झारखंड के प्रधान सचिव, सह आयुक्त वाणिज्य कर विभाग के०के० खंडेलवाल जैसे आई०ए०एस० अधिकारियों के ऊपर कई प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ हैं, लेकिन तब भी उनके भीतर के शिक्षक ने बच्चों के जीवन को रोशन करने का रास्ता ढूँढ़ लिया। बिहार के पूर्व डी०जी०पी० अभयानंद का भी पूरा समय अब बच्चों के लिए है, जो आनंद कुमार के साथ मिलकर सुपर-30 कोचिंग चलाते हैं।

पाटलिपुत्र के प्लेटफॉर्म पर थानेदार मास्टर बन गए हैं। अफसर का फर्ज और शिक्षक का दायित्व निभा रहे ये अधिकारी न केवल नियमित रूप से बच्चों को पढ़ाने जाते हैं, बल्कि बच्चों का सामान्य ज्ञान परखते हैं और उन्हें जीवन-पथ पर चलना भी सिखाते हैं।

लुधियाना के वकील हरिओम जिंदल भी सिविल और क्राइम मामलों की वकालत करते हैं, लेकिन फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूरों के बच्चों और झुग्गियों में रहने वाले बच्चों को जब पढ़ा लेते हैं, तभी उनके भीतर बैठे शिक्षक की आकांक्षाएँ पूरी होती हैं।

लखनऊ की फैशन डिजाइनर प्रीति जायसवाल भीख माँगने वाले बच्चों का जीवन तराशने में जुटी हैं। अपने प्रोफेशन से अलग इनमें शिक्षा का उजियारा फैलाने की ललक है और इनकी पहल से बच्चों का ज्ञान और मनोबल बहुत बढ़ गया है।

रुद्रप्रयाग (उत्तराखंड) के युवा जिलाधिकारी मंगेश घिल्डियाल की चिंता थी कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे आगे कैसे बढ़ें? जिसके लिए वे स्वयं दूर-दराज के विद्यालयों की दूरी पैदल नापकर वहाँ बच्चों को जीवन का पाठ पढ़ा रहे हैं। उनकी पत्नी ऊषा घिल्डियाल भी उनके इस मिशन में उनके साथ हैं और राजकीय बालिका इंटर कॉलेज, रुद्रप्रयाग में नवीं और दसवीं की छात्राओं को पूरे मनोयोग से विज्ञान विषय पढ़ा रही हैं; क्योंकि वहाँ विज्ञान के शिक्षक नहीं हैं।

डी०एम० मंगेश कार्यभार सँभालते ही यह कार्य करने लगे थे। जब उन्होंने देखा कि जिले में सरकारी शिक्षा-व्यवस्था का बुरा हाल है और नौनिहालों की सुध लेने वाला भी कोई नहीं है तो वे बेहद व्यथित हुए। खुद शिक्षक बनकर विद्यालयों में बच्चों के बीच गए। अब तक मंगेश दूर-दराज के पाँच दर्जन से अधिक विद्यालयों की दूरी पैदल नाप चुके हैं। इसके लिए वे भोर होते ही गाँवों की ओर चल पड़ते हैं। नाश्ता रास्ते में ही होता है और दोपहर का भोजन बच्चों के साथ स्कूल में। इसी बहाने मध्याह्न भोजन की गुणवत्ता की परख भी हो जाती है।

सामान्य परिवार में जन्मे मंगेश बताते हैं—पिता प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक थे; जबकि माँ अनपढ़ थीं। मैं स्वयं इंटर तक सरकारी विद्यालयों में पढ़ा। इसलिए पहाड़ जैसी यहाँ के लोगों की परेशानियों को भली भाँति समझता हूँ। उन्होंने शिक्षकों को सख्त हिदायत दी कि बच्चों के मामले में किसी प्रकार की लापरवाही न बरती जाए।

बिहार के पूर्व डी०जी०पी० अभयानंद जब डी०जी०पी० थे, तब भी बच्चों को पढ़ाते थे और रिटायरमेंट के बाद भी पढ़ा रहे। सन् 2003 में गरीब बच्चों को आई०आई०टी० की तैयारी के लिए आनंद कुमार के साथ सुपर-30 की नींव रखी। सन् 2007 में आनंद कुमार से अलग होकर रहमानी सुपर-30 और मगध सुपर-30 आदि के साथ जुड़कर बच्चों का मार्गदर्शन जारी रखा।

सन् 2014 में रिटायरमेंट के बाद अभयानंद ने सुपर-30 की स्थापना ए०डी० सिंह के सहयोग से की। अब उनकी क्लास में एडमिशन ही आई०आई०टी० में दाखिले की गारंटी की तरह है। वे कहते हैं—पढ़ाने से मुझे शांति व संतुष्टि मिलती है। रिटायरमेंट के बाद मेरा पूरा समय बच्चों के लिए है और बच्चे इसका सुफल परिणाम भी दे रहे हैं।

इसी प्रकार पाटलिपुत्र रेल थानाध्यक्ष दिलीप कुमार झा सुरक्षित सफर की गारंटी के साथ गरीब बच्चों की जिंदगी की गाड़ी भी पटरी पर लाने में जुटे हैं। पाटलिपुत्र स्टेशन के आस-पास की झोंपड़पट्टी में रहने वाले 150 से अधिक बच्चों को वे पढ़ा रहे हैं। उन्होंने कहा—''डेढ़ साल पहले जब मैं पाटलिपुत्र स्टेशन पर आया तो प्लेटफार्म पर गरीब बच्चों को बोतल चुनते देखा।

''उन्हें इन बच्चों को पढ़ाने का ख्याल आया, ताकि इनका भविष्य सँवर सके। 25 बच्चों से प्लेटफार्म पर संस्कारशाला की शुरुआत हुई थी। अब संख्या 200 तक पहुँच गई है। प्लेटफार्म संख्या एक पर सप्ताह में छह दिन क्लास लगती है। पहले एक ही बार में पढ़ाई होती थी, अब भीड़ बढ़ने पर इसे दो बार में चलाया जा रहा है। इन बच्चों की पढ़ाई जारी रखने में आस-पास के रिटायर्ड लोगों और युवाओं का बड़ा योगदान है।''

जब डी०एम० क्लास में पहुँचकर बच्चों से सवाल-जवाब करते हैं, अपने अनुभव का ज्ञान बाँटते हैं तो बच्चे उत्साहित होकर उनकी हर बात को तन्मयता से सुनकर जेहन में बिठा लेते हैं। ऐसा ही वाराणसी में हुआ है। डी०एम० खुद अर्दली बाजार स्थित उच्च प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को गुणात्मक शिक्षण देने में जुटे हैं। हर शनिवार दो घंटे इस विद्यालय में बनारस के डी०एम० शिक्षक बन जाते हैं।

स्कूल के प्रधानाध्यापक बाबूलाल यादव बताते हैं कि जिलाधिकारी द्वारा स्कूल को गोद लेने के बाद छात्र संख्या 53 से बढ़कर 92 हो गई है। स्कूल का मुख्यद्वार बन गया है। अब जिलाधिकारी वॉटर कूलर, सुरक्षित बाउंड्री, टेबल-कुरसी, खेल के सामान आदि की व्यवस्था करवा रहे हैं। बच्चे भी कहते हैं कि जब से जिलाधिकारी आने लगे हैं, बहुत कुछ ठीक हो गया है। मजे की बात यह है कि जिस दिन डी०एम० क्लास लेते हैं, उस दिन स्कूल में हर बच्चा उपस्थित होता है। बनारस के पहले भी योगेश्वर राम मिश्र जब बाराबंकी के डी०एम० थे तब भी जाँच के दौरान स्कूल पहुँचने पर क्लास में चले जाते और बच्चों से संवाद करते थे।

स्टेशन पर भूख से बिलबिलाते, भीख माँगते बच्चों को देखकर जहाँ एक ओर लोग दूर भागते हैं, वहीं फैशन डिजाइनर प्रीति जायसवाल एक ऐसी महिला हैं, जिन्होंने न केवल भूख से बिलखते इन बच्चों का दरद समझा, बल्कि उनको शिक्षित करने का भी बीड़ा उठाया। पेशे से फैशन डिजाइनर प्रीति को समाजसेवा खून में मिली है। वे कहती हैं—''मेरे पिता कॉन्ट्रेक्टर (ठेकेदार) बनने से पहले शिक्षक थे और गरीब बच्चों को पढ़ाने के लिए वह हमेशा तत्पर रहते थे। उन्हें पकड़-पकड़कर लाते और नि:शुल्क पढ़ाते थे। उनको देखकर ही मेरे मन में गरीब बच्चों को पढ़ाने की ललक जगी थी।''

नेपाल में निफ्ट से फैशन डिजाइनिंग का कोर्स करने वाली प्रीति शादी के बाद लखनऊ आकर बस गईं। जब उन्होंने इलाहाबाद से लखनऊ आते समय

मनुष्य की सबसे अधिक दीन-हीन अवस्था उस समय दिखाई देती है, जब वह छोटी-छोटी बातों के लिए अनुचित आसक्ति या मोह-भाव प्रदर्शित करता है।

चारबाग स्टेशन पर भूखे-गरीब बच्चों की दशा देखी तो उनका दिल रो उठा। उन्होंने तय कर लिया कि अब इन बच्चों की जिंदगी में शिक्षा का उजियारा फैलाऊँगी, ताकि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें और कभी दूसरों के आगे हाथ न फैलाएँ।

झारखंड के वरिष्ठ आई० ए० एस० के० के० खंडेलवाल फिलहाल प्रधान सचिव सह आयुक्त वाणिज्य कर विभाग हैं। इसी साल उनके पढ़ाए छह छात्र आई० आई०टी० प्रवेश परीक्षा में सफल रहे। खंडेलवाल खुद आई०आई०टी० खड्गपुर से पढ़े हैं। वे वैज्ञानिक बनना चाहते थे, लेकिन आई०आई०टी० के बाद आई० ए०एस० बन गए। जब उन्होंने खुद मेहनत कर, नए सिलेबस को पढ़ अपने बड़े बेटे अंकुर खंडेलवाल को आई०आई०टी० की तैयारी करवाई तो उसकी ऑल इंडिया रैंकिंग 57 आई।

इसके बाद छोटे बेटे अनुपम खंडेलवाल और भानजे अनिकेत को भी पढ़ाया तो छोटे बेटे की ऑल इंडिया रैंकिंग नौ और भानजे की 56 आई। यह देखकर उन्हें लगा कि बच्चों को पढ़ाना चाहिए। 2015 में छह बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। जब जून में रिजल्ट आया तो सभी सफल रहे। खंडेलवाल कहते हैं—''बच्चों की सफलता आनंद देती है। गुरु की पहचान शिष्यों से होती है। आपके पढ़ाए बच्चे सफल हो जाएँ तो खुशी और आनंद की सीमा नहीं होती। मुझे बच्चों को पढ़ाना अच्छा लगता है। बिना रुचि के यह काम संभव नहीं।''

लुधियाना के किचलू नगरवासी वकील हरिओम जिंदल ने झुग्गियों में रहने वाले बच्चों को शिक्षित करने के लिए झुग्गियाँ ही बनाकर स्कूल बनाया है। सिविल और क्राइम मामलों की वकालत करने वाले हरिओम जिंदल कहते हैं—''जब मैं खुद कॉलेज में पढ़ता था, तब अमीर-गरीब छात्रों में भेद देखता और सोचता कि क्या गरीब के बच्चों को पढ़ने का हक नहीं? क्या देश के निर्माण में इनका योगदान नहीं हो सकता? उसी समय मन में ठान लिया था कि गरीब बच्चों को पढ़ाने का बीड़ा उठाऊँगा। आज करीब 100 बच्चों को पढ़ाता हूँ। ❑

सोते हुए छत्रपति शिवाजी पर एक बालक ने प्रहार करने का प्रयास किया, परंतु उसे सेनापति तानाजी ने पकड़ लिया। बाद में शिवाजी ने उससे पूछा—''तुम कौन हो और यहाँ क्यों आए थे?'' बालक ने उत्तर दिया—''मेरा नाम मालोजी है और मैं आपकी हत्या करने के लिए यहाँ आया था।'' शिवाजी ने पूछा—''तुम मेरी हत्या क्यों करना चाहते हो?'' बालक बोला—''मेरे पिता आपकी सेना में एक सैनिक थे। उनके युद्ध में मारे जाने पर हमें राज्य की ओर से कोई सहायता नहीं मिली। घर में अनाज नहीं था। माँ तो कई दिनों से बीमार पड़ी है। मैं भोजन की तलाश में घर से निकला था कि आपके शत्रु सुभागराय ने मुझे बताया कि शिवाजी कितना निष्ठुर है, तुम्हारे पिता की मृत्यु के उपरांत उसने तुम्हारा तनिक भी ध्यान नहीं रखा, इसलिए तुझे शिवाजी से बदला लेना चाहिए। यदि तू उन्हें मार आएगा, तो मैं तुझे बहुत सारा धन दूँगा। इसलिए मैं आपको मारने चला आया।''

शिवाजी ने कहा—''दुष्ट! अब तू अपने दुष्कृत्य हेतु मरने के लिए तैयार हो जा।'' बालक ने कहा—''मृत्यु से मैं बिलकुल भी नहीं डरता, परंतु मैं एक बार अपनी मरणासन्न माँ के दर्शन करने जाना चाहता हूँ। मैं वचन देता हूँ कि कल प्रातः लौट आऊँगा।'' महाराज ने आज्ञा दे दी। दूसरे दिन सवेरे बालक दरबार में उपस्थित होकर बोला—''महाराज! मैं अब मृत्युदंड के लिए तैयार हूँ।'' शिवाजी का दिल पिघल गया। उनने कहा—''ऐसे चरित्रवान बालक को मैं मृत्युदंड न दे सकूँगा। मालो! तेरे जैसे रत्न ही देश व जाति का गौरव बढ़ा सकते हैं।'' शिवाजी ने उसे सेना में नौकरी दे दी।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 145

मौन-साधना के प्रभाव

योग विज्ञान के अंतर्गत लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के उत्कर्ष के लिए अनेक विशिष्ट साधना-पद्धतियाँ एवं यौगिक प्रक्रियाएँ मौजूद हैं। इन्हीं साधना-पद्धतियों में से एक है—ध्यानयोग-साधना। ध्यान-साधना ऋषियों द्वारा प्रणीत मानवीय चेतना के उच्चतम विकास की एक विशिष्ट विधि है। साधना क्षेत्र के साथ-साथ सामान्य जीवन में भी मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व विकास एवं अनेक तरह की व्यक्तित्व संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु ध्यानयोग-साधना को अत्यंत लाभकारी और प्रभावी विधि के रूप में अपनाया जाता है।

वर्तमान में ध्यानयोग-साधना की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित-प्रसारित हो रही हैं। ध्यान की इन्हीं विभिन्न विधियों में से एक विशिष्ट विधि है—मौन ध्यान। मौन साधना के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने ध्यान की इस प्रभावकारी विधि को सदैव महत्त्व प्रदान किया है। मथुरा, शांतिकुंज व अन्य मिशन के साधना-केंद्रों पर मौन साधना के रूप में इस ध्यानयोग के अभ्यास का शिक्षण-प्रशिक्षण अनवरत चलता आ रहा है। इस विशिष्ट साधना-प्रक्रिया के महत्त्व को वैज्ञानिक रीति से परखकर उसकी उपयोगिता को जनसामान्य के लिए सुलभ करने की दृष्टि से देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विगत दिनों एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

सन् 2017 में योग एवं स्वास्थ्य विभाग देव संस्कृति विश्वविद्यालय के अंतर्गत संपन्न किया गया यह शोधकार्य शोधार्थी प्रवीण कुमार द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति जी डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ० विजय कुमार सिंह के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस प्रायोगिक अध्ययन का विषय है—**'इफेक्ट ऑफ मौन साधना (साइलेंट मेडिटेशन) ऑन न्यूरो कार्डियो फिजियोलॉजी'** अर्थात मौन ध्यान के मस्तिष्क और हृदय के शरीर क्रियाविज्ञान पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन।

ध्यानयोग एवं मौन साधना के लाभों को योग एवं अध्यात्म के क्षेत्र में चेतनात्मक विकास की श्रेष्ठतम विधि के रूप में माना जाता है, परंतु इस शोध के माध्यम से शोधार्थी ने इस साधना के लौकिक और अलौकिक प्रभावों को सम्मिलित कर इनके शारीरिक क्रियाविधि पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों और इस प्रभाव के फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के उपाय के रूप में, योग विज्ञान की इस महत्त्वपूर्ण मौन साधना-विधि का वैज्ञानिक और व्यावहारिक महत्त्व प्रस्तुत करते हुए मानव शरीर के संचालन के सभी सूक्ष्म और स्थूल केंद्रों पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाली तकनीक को खोजने का सफल प्रयास किया है।

मौन साधना का यह अध्ययन योग चिकित्सा विज्ञान के एक नूतन आयाम के रूप में सामने लाता है। यह मौन ध्यान, जिसे ध्यानयोग की उच्चस्तरीय साधनाओं में विशिष्ट स्थान प्राप्त है, यह साधना कैसे हमारे मस्तिष्क और हृदय तंत्र पर प्रभाव डालती है एवं इसका व्यावहारिक जीवन में क्या लाभ संभव है—इन प्रश्नों के समाधान को शोधार्थी ने इस शोधकार्य में तथ्यात्मक और प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया है।

इस विशेष अध्ययन के प्रयोग हेतु शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम हिमालय क्षेत्र के ऋषिकेश स्थित स्वामी राम साधक ग्राम आश्रम का चयन किया गया। इस आश्रम में कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा 25 से 60 वर्ष की आयु वर्ग वाले 50 साधकों का चयन किया गया। ये ऐसे साधक थे, जिन्हें एक वर्ष से अधिक समय से ध्यान-साधना करने का अनुभव था एवं आश्रम में नियमित अभ्यासरत थे। ये साधक 'असोसिएशन ऑफ हिमालयन योगा मेडिटेशन सोसाइटी इंटरनेशनल' के सदस्य के रूप में इस हिमालय के क्षेत्र में साधना-अभ्यास कर रहे थे। इनमें एशियन, अमेरिकन, साउथ अमेरिकन, यूरोपियन, ऑस्ट्रेलियन आदि प्रवासी साधक भी सम्मिलित रहे।

प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व शोधार्थी द्वारा सभी चयनित प्रतिभागियों का इलेक्ट्रोसेफेलोग्राफ (EEG) एवं हार्ट रेट सेरियोबिलिटि (HRC) उपकरण के माध्यम से परीक्षण

किया गया। तत्पश्चात प्रयोग के अंतर्गत चालीस दिनों तक नियमित तीन घंटे मौन ध्यान-साधना का अभ्यास एवं इसके अतिरिक्त आश्रम की साधनायुक्त दिनचर्या का पालन करवाया गया। प्रयोग की अवधि में पूरा समय मौन रहने, आश्रम के बाहर न जाने, इलेक्ट्रॉनिक संवाद के प्रयोग न करने के अनुबंध सम्मिलित किए गए। प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर पूर्व की भाँति पुनः शोध-उपकरणों से सभी प्रतिभागियों का परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने अपने शोध परिणाम के रूप में यह पाया कि मौन ध्यान-साधना का हमारे मस्तिष्क और हृदय तंत्र पर एक सकारात्मक और सार्थक प्रभाव पड़ता है।

इस शोध अध्ययन में प्राप्त हुए परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शोधार्थी द्वारा प्रयोग में अपनाई गई मौन साधना-विधि मनोशारीरिक क्षमताओं के संतुलन एवं विकास के लिए अत्यंत लाभकारी है। इस विशिष्ट साधना का आध्यात्मिक महत्त्व यह है कि यह मौन की अनुभूति को साधक के अंतर्मन में स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मतर अस्तित्व के चैतन्य तत्त्व का संचार करती है और साधक चेतना के शिखर पर आरूढ़ होकर संपूर्ण अस्तित्व की मौन, स्थिरता, शांति, सजगता का अनुभव प्राप्त करता है। वैज्ञानिक रीति से इस प्रायोगिक अध्ययन के परिणामों में मौन ध्यान के अनेक महत्त्वपूर्ण और लाभकारी आयाम प्रकट हुए हैं।

मस्तिष्कीय कार्यप्रणाली को संचालित करने में डेल्टा, थेटा, अल्फा और बीटा—इन मस्तिष्कीय तरंगों की मुख्य भूमिका होती है। ये तरंगें मस्तिष्क के माध्यम से संपूर्ण अस्तित्व के चैतन्य-प्रवाह को नियमित और संचालित करती हैं। इन तरंगों पर हमारी मानसिक गतिविधियों का सीधा प्रभाव पड़ता है। अनेक ध्यान-विधियों के अध्येताओं ने यह पाया है कि ध्यान का प्रभाव हमारे मस्तिष्क की अल्फा तरंगों पर पड़ता है। इन तरंगों का हमारी स्थिरता, शांति और सजगता से गहरा संबंध है, परंतु यह शोध अध्ययन इस सत्य को उद्घाटित करता है कि मौन ध्यान-साधना का संबंध अल्फा से नहीं, अपितु गामा तरंगों से है।

मौन ध्यान में साधक की श्वास-प्रश्वास पर गहरी सजगता बनती जाती है। प्राणों की गति गहरी और धीमी हो जाती है, जिसका स्वास्थ्य और साधना—दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह अध्ययन दरसाता है कि मौन साधना और ध्यान के नियमित अभ्यास से हमारी सजगता, स्मृति, कल्पनाशक्ति, सकारात्मक भावनाएँ और आध्यात्मिक अनुभवों की क्षमता का विकास होता है। साथ ही शांति, स्थिरता, दृढ़ता और आरोग्यदायक व्यक्तित्व क्षमताएँ विकसित होती हैं। मौन ध्यान-साधना के आध्यात्मिक, यौगिक और वैज्ञानिक महत्त्व को प्रस्तुत करने वाला यह शोध अध्ययन यौगिक साधनाओं के महत्त्व और हम सभी के सामान्य जीवन में इन विशिष्ट साधनाओं-तकनीकों के लाभकारी पक्षों को अपनाने की प्रेरणा और जानकारी प्रदान करता है। साधकों और सामान्य जनों, दोनों के लिए यह अध्ययन समान रूप से उपादेयी है। ❑

बलि अपनी संपदा लोकहित के लिए भगवान को सौंपना चाहते थे। शुक्राचार्य ने भरसक स्वार्थ को प्रधानता देने और दान न करने के लिए समझाया। यहाँ तक कि संकल्प का जल छोड़ने के लिए कमंडलु के छिद्र में उड़कर बैठ गए। बलि ने गुरु के भी अनुचित आदेश का उल्लंघन किया और कमंडलु के छिद्र में सींक डालकर अवरोध बने गुरु को निकाल फेंका। इसी प्रसंग में शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। वास्तव में सत्कार्य में रोड़ा अटकाने वालों को ऐसा ही भुगतना पड़ता है।

प्रभावशाली संवाद के आधारभूत सूत्र

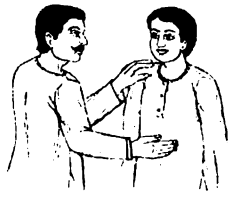

व्यक्ति का पारिवारिक, सामाजिक एवं पेशेवर जीवन बहुत कुछ आपसी संवाद पर निर्भर करता है। इनकी सफलता-विफलता में संवाद कौशल की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। दूसरों के साथ संवाद के समय में कुछ बातों का ध्यान रखा जाए तो आपसी संवाद को प्रभावशाली बनाया जा सकता है; जबकि इनकी उपेक्षा इस वांछित प्रभाव को कम करती है तथा मनोवांछित सफलता एवं संतोष से व्यक्ति को दूर रखती है।

संचार का महत्त्व समझें तथा इसको अपने जीवन का मुख्य हिस्सा मानें और इसके लिए नित्य कुछ समय दें। कुछ समय विशुद्ध रूप में इस पर विचार को दें तथा अपना मूल्यांकन करें। संवाद कौशल में कहाँ सुधार किया जाना है, क्या सुधार होना है, इसका खाका बनाएँ और इसके सुधार के लिए नियमित रूप से कुछ अभ्यास करें। इसमें अपने किसी शुभचिंतक या जानकार को शामिल कर सकते हैं तथा इनकी प्रतिपुष्टि (फीडबैक) प्राप्त करके तथा सुझावों का सार्थक उपयोग किया जा सकता है।

इस प्रक्रिया में अच्छे एवं प्रभावी संवादकों को सुना जा सकता है, उनके संवाद-कौशल की बारीकियों को समझते हुए इनसे अपने काम की बातों को सीखा जा सकता है तथा इनको लागू करने का अभ्यास किया जा सकता है। इस तरह संवाद को अपने सचेतन विकास का हिस्सा बनाते हुए व्यक्तित्व के निखार का उपकरण बनाया जा सकता है और समय के साथ अपने संवाद-कौशल में आवश्यक सुधार को शामिल कर एक प्रभावशाली व्यक्तित्व को गढ़ा जा सकता है।

आपसी संवाद में यह महत्त्वपूर्ण है कि अपने संदेश को समझें तथा इस पर केंद्रित रहें। साथ ही अपने संदेश को सरल बनाएँ और विनम्र बने रहें, लेकिन अपने संदेश को लेकर दृढ़ रहें, इस पर डटे रहें। बिना किसी के भाव को आहत किए भी यह किया जा सकता है। अपनी बात को अपनी नैतिक सीमा में रखें। सकारात्मक-संतुलित भाव एवं दृढ़ता के साथ कही गई बात का अपना असर होता है; जबकि जल्दबाजी या तैश में कही बात अपने प्रभाव में चूक जाती है और नकारात्मक प्रतिक्रिया को जन्म देती है। अत: अपने संदेश से इधर-उधर न भटकें और इसे सदा सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के भाव से जोड़े रखें।

अपने दर्शक या श्रोताओं से भावनात्मक तार जोड़ें। यह प्रभावी संवाद का एक केंद्रीय तत्त्व है। इसी के आधार पर यह संभव हो पाता है कि आप की बात हृदय की गहराइयों से उठेगी और सामने वाले के हृदय तक पहुँचेगी। अपने नेक इरादों के साथ इसके लिए दर्शक या श्रोताओं की समझ भी आवश्यक हो जाती है कि वो खड़े कहाँ हैं, क्या चाहते हैं, उनकी मूलभूत आवश्यकताएँ क्या हैं, वे किन समस्याओं से जूझ रहे हैं—इस विषय पर किए गए होमवर्क के आधार पर संभव हो पाता है कि आप श्रोताओं के लिए कुछ ठोस सुझाव या सार्थक समाधान दे सकें। इसी के आधार पर संवाद श्रोताओं के मन-मस्तिष्क की गहराइयों तक प्रवेश कर पाता है अन्यथा कितनी ही औपचारिकताओं एवं ताम-झाम के बावजूद संवाद अपने प्रभावी निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पाता।

सोच-समझकर बोलें। आपसी संवाद में यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि ध्यान से पूरी बात को सुनें, समझें व सोच-समझकर अपना उत्तर दें। कोई भी प्रतिक्रिया जल्दबाजी में न दें। साथ ही यह भी सुनिश्चित करते जाएँ कि लोग आपको समझ पा रहे हैं या नहीं। एकतरफा संवाद से बचें। श्रोता आपकी बात को कितना समझ पा रहे हैं, उनके हाव-भाव को देखकर इसे समझा जा सकता है। श्रोताओं को कितना समझ आ रहा है, इसकी परख बीच-बीच में श्रोताओं से प्रश्न पूछ करके की जा सकती है। यदि उन्हें विषय भारी पड़ रहा है तो कुछ रोचक प्रस्तुतियों, हलके तथ्यों या विनोद के साथ संवाद को रुचिकर बनाया जा सकता है।

इसके लिए आवश्यक है कि एक अच्छा श्रोता बनें। संवेदी श्रवण आपसी संवाद का एक महत्त्वपूर्ण आधार होता है। धैर्यपूर्वक श्रवण से सामने वाले की मन:स्थिति एवं

यथास्थिति का बोध होता है और तदनुरूप एक सार्थक संवाद का आधार तैयार होता है। ऐसा करने से श्रोता का वक्ता के प्रति एक सम्मान एवं विश्वास का भाव भी पैदा होता है।

इस सबकी सम्मिलित परिणति एक प्रभावशाली संवाद के रूप में सामने आती है अन्यथा बिना सामने वाले को सुने-समझे एकतरफा संवाद बहुत ही अरुचिकर एवं नीरस होता है, जिसमें वक्ता बोलता अधिक है, सुनता कम है। ऐसे में कई बार तो व्यक्ति की अहंता एवं झक्कीपन का भाव फूट-फूटकर प्रकट हो रहा होता है और थोडी ही देर में श्रोता संवाद में रुचि खो बैठते हैं और शिष्टाचारवश वक्ता को झेल रहे होते हैं। ऐसे संवाद की परिणति एक नकारात्मक प्रभाव के रूप में सामने आती है। सार रूप में प्रभावी संवाद के लिए अच्छा श्रोता होना आवश्यक होता है, जो अपने श्रोताओं के प्रति सम्मान एवं संवेदना के आधार पर संभव होता है।

अपनी गैर-शाब्दिक भाषा (बॉडी लैंग्वेज) पर भी ध्यान दें। यह बोले जा रहे शब्दों से अधिक प्रभावशाली होती है। आप क्या बोल रहे हैं, इससे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है कि आप कैसा अनुभव कर रहे हैं, किस गहराई से आपके शब्द प्रस्फुटित हो रहे हैं, जो आपकी बॉडी लैंग्वेज के माध्यम से, आपके हाव-भाव के माध्यम से संप्रेषित होता है। इसलिए ईमानदारी की नीति सदा श्रेष्ठ नीति रहती है। आप दर्शकों में वास्तव में रुचि ले रहे हैं, उनका सम्मान करते हैं, उनके साथ कुछ आत्मीय पल साझा करने जा रहे हैं, ये आपकी प्रसन्नता, सकारात्मक रुख एवं हलकी मुस्कान के साथ प्रकट होता है।

आपका सत्य आपकी आँखों, आपके हाव-भाव एवं वाणी के माध्यम से बह रहा होता है, जिसके आधार पर दर्शकों से सीधे आँखों-में-आँखें डालकर संवाद करने की स्थिति बनती है और सहज रूप में एक प्रभावी संवाद घटित होता है। ❑

कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि में ऋषि मुद्गल तपस्यारत थे। मास के पहले पक्ष में वे खेतों से बीज बीनकर एकत्र करते, दूसरे पक्ष में उसे यज्ञ और अतिथि सत्कार में व्यय कर देते। इसके उपरांत जो अन्न शेष रहता, मात्र उससे उदरपूर्ति करते। उनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से दुर्वासा ऋषि अनेक बार उनके उदरपूर्ति के अवसर पर उनके आश्रम पहुँचे, परंतु ऋषि मुद्गल ने हर बार निस्संकोच उन्हें अपने आतिथ्य से संतुष्ट किया।

उनकी निस्पृहता से प्रसन्न होकर दुर्वासा ऋषि ने उन्हें स्वर्ग प्राप्ति का वरदान दिया। देवदूत जब ऋषि मुद्गल को लेने आए तो उन्होंने उनसे स्वर्ग के संबंध में पूछा। देवदूत बोले—"वहाँ शोक का नाम नहीं, मात्र सुख-ही-सुख है, परंतु वह केवल भोगभूमि है। वहाँ मृत्युलोक में किए कर्मों का फल भोगा जाता है, नए कर्म नहीं किए जा सकते।"

मुद्गल गंभीर स्वर में बोले—"ऐसा स्वर्गलोक मेरा आदर्श नहीं हो सकता, जहाँ चित्तशुद्धि का कोई मार्ग नहीं। मैं मृत्युलोक में रहकर ही कर्म-साधना द्वारा निर्वाण प्राप्त करूँगा।" सच्चे तपस्वी का जीवन- उद्देश्य सांसारिक भोगों के पीछे भागना नहीं, अपितु अंतरात्मा का परिष्कार होता है।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्

श्रद्धा एक आध्यात्मिक तत्त्व है, आदर्शों के प्रति अगाध प्रेम है, एक रूहानी शक्ति है, जो व्यक्ति को असंभव में भी संभव की संभावना को देखने की दृष्टि देती है। यह माया के, अज्ञान के सघन आवरण के पार टिमटिमा रहे सत्य को देखने, उस ओर बढ़ने व उसे धारण करने की सूझ देती है। यह वह छलाँग है, उड़ान है, जो बुद्धि की अपंगता को पंख लगा देती है और उसे परम सत्य की झलक-झाँकी दिखाकर जीवन के राजमार्ग का पथ प्रशस्त करती है। तर्कशील बुद्धि को प्राय: यह उड़ान समझ नहीं आती, अत: श्रद्धा की इस उड़ान को वह अंधश्रद्धा तक कह डालती है, लेकिन अपनी परिणति में इसके चमत्कारों को देखकर तर्कप्रधान बुद्धि मौन हो जाती है और श्रद्धा की शक्ति-सामर्थ्य के आगे उसे नतमस्तक होना पड़ता है।

वास्तव में सांसारिक दृष्टि के लिए श्रद्धा अंधी ही होती है; क्योंकि वो इसके अंदर झिलमिला रही प्रकाश व समाधान की किरण को देख व समझ नहीं पा रही होती। यही अंधश्रद्धा जब अपनी निष्ठा की कसौटी पर अंतिम समय तक डटी रहती है व खरी उतरती है, तो इसमें प्रज्ञा के प्रसून खिलते हैं और जीवन के परम समाधान उपलब्ध होते हैं। श्रद्धा से प्रज्ञा की यात्रा निष्ठा के आधार पर तय होती है। वह श्रद्धा ही क्या, जो अपने सत्य से साक्षात्कार होने तक अडिग न रहे। ऐसी संशयग्रस्त ढुलमुल श्रद्धा के हिस्से में ही हताशा-निराशा और असफलता आती है अन्यथा अटूट श्रद्धा अपनी फलश्रुति में एवं अपनी परिणति में अचूक सिद्ध होती है।

गीता में भी कहा गया है कि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बनता जाता है। श्रद्धा तामसिक है या राजसिक या सात्त्विक—तदनुरूप यह फलित होती है। अपने पावनतम भाव में आरूढ़ श्रद्धा देवत्व एवं ईश्वरत्व के अनुदानों से कृतार्थ होती है और प्रज्ञारूपी प्रकाशपूर्ण ज्ञान के रूप में फलित होती है, जिसकी घोषणा करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता कहती है कि—**श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्** अर्थात श्रद्धावान व्यक्ति को ज्ञान की प्राप्ति होती है।

श्रद्धा किन चरणों से होकर प्रज्ञा के द्वार तक पहुँचती है, पातंजल योगदर्शन में इसके सोपानों का सुंदर वर्णन मिलता है। **श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्** *(पा.यो. सू.—1.20)*। संयम इसका प्रारंभिक बिंदु रहता है; क्योंकि इसी के आधार पर वह ऊर्जा संगृहीत होती है, जो निष्ठा को अंतिम निष्कर्ष तक पहुँचाने का काम करती है। बिना संयम के श्रद्धा को निष्ठा का वह बल, शक्ति या ईंधन नहीं मिल पाता, जो इसे मंजिल तक पहुँचा सके और वह राह में ही बहक-भटककर दम तोड़ देती है। अपनी चरम फलश्रुति के लिए श्रद्धा का परम आदर्श एवं लक्ष्य के साथ जुड़ना अभीष्ट होता है, तभी यह अटल निष्ठा को धारण कर अपने अंतिम ध्येय तक पहुँच पाती है और तभी इससे जुड़े आध्यात्मिक चमत्कार घटित होते हैं, फलित होते हैं। ❑

बार-बार रंग बदलने की अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए गिरगिट ने कछुए से कहा—"महाशय! देखो तो मैं कितना योग्य हूँ। भला ऐसी कला भी किसी के पास है।"

कछुए ने उत्तर दिया—"श्रीमान्! दूसरों को धोखा देने के इस पाखंड को योग्यता समझने से कहीं ज्यादा अच्छा होता कि तुम अयोग्य ही बने रहते तो कम-से-कम लोग भ्रम में तो न पड़ते।"

युगगीता —252

दंभी, दुराग्रही एवं दुःखी होते हैं आसुरी वृत्ति से युक्त मनुष्य

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की दसवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के नौवें श्लोक की विवेचना प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, उनकी बुद्धि तुच्छ या मंद ही होती है व वे सबका अपकार करने वाले क्रूर कर्म ही करना जानते हैं, इसलिए ऐसे मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने में ही होता है। यह कहने के पीछे उनका अभिप्राय है कि ऐसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य, जो अपने स्वभाव को नष्ट कर बैठते हैं तथा मात्र शरीर तक अपने अस्तित्व को केंद्रित मान बैठते हैं, उनकी बुद्धि परिणामस्वरूप संकीर्ण या तुच्छ हो जाती है, उनके कर्म भी क्रूर या अहितकारी हो जाते हैं और इसीलिए उनकी सामर्थ्य का उपयोग मात्र जगत् को विनष्ट करने में ही किया जा सकता है। यहाँ श्रीभगवान आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों को प्राप्त बुद्धि को मिथ्या ज्ञान भी कहकर पुकारते हैं। मिथ्या ज्ञान का तात्पर्य उस सोच से है, जिसमें व्यक्ति यह मानने लगता है कि इस जगत का कोई आधार नहीं, कोई आश्रय नहीं, यहाँ कोई ईश्वर, कोई कर्म विधान नहीं, यहाँ भोग ही सब कुछ है—योग, साधना जैसा यहाँ कुछ भी नहीं, यहाँ जीवन का कोई लक्ष्य, कोई उद्देश्य, कोई गंतव्य नहीं और इसीलिए यहाँ जीवन को मात्र भोगों की प्राप्ति में झोंक देने में भी कोई समस्या नहीं है।

स्पष्ट है कि जो व्यक्ति इस तरह की धारणाओं एवं मान्यताओं को आधार बनाकर अपना जीवन जिएगा—वह अपने नित्य स्वरूप से तो अपरिचित ही रह जाएगा; क्योंकि आत्मा का तो स्वभाव ही परम शांति में, परम संतुलन में छिपा हुआ है। ऐसे व्यक्ति की बुद्धि फिर तुच्छ, संकीर्ण होकर तर्क-कुतर्क, शंका-कुशंका के जाल में फँस बैठती है। ऐसा होने पर उसके भीतर की जो भी ऊर्जा शेष है, वह विध्वंसक ही हो जाती है। उसका उपयोग फिर किसी सार्थक या सृजनात्मक कार्य में कर पाना संभव नहीं हो पाता। इस तरह प्रकृति इन आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत् के ध्वंस में ले लेती है, ताकि ध्वंस के उपरांत सृजन की मनोरम परिस्थितियाँ विनिर्मित की जा सकें।]

तत्पश्चात श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि—

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥ *10*॥

शब्दविग्रह—काम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः, मोहात्, गृहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः।

शब्दार्थ—दंभ, मान और मद से युक्त मनुष्य (**दम्भमान-मदान्विताः**), किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली (**दुष्पूरम्**), कामनाओं का (**कामम्**), आश्रय लेकर (**आश्रित्य**), अज्ञान से (**मोहात्**), मिथ्या सिद्धांतों को (**असद्ग्राहान्**), ग्रहण करके (और)(**गृहीत्वा**), भ्रष्ट आचरणों को धारण करके (संसार में) (**अशुचिव्रताः**), विचरते हैं (**प्रवर्तन्ते**)।

अर्थात ऐसे मनुष्य दंभ, मान और मद से युक्त होकर, कभी न पूरी होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर, अपवित्र व्रतों को धारण करके, मोह के कारण दुराग्रहों को धारण किए हुए संसार में विचरते हैं। इन सूत्रों के साथ श्रीभगवान आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के लक्षणों को और भी विस्तार से समझाते हैं। वे कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति दंभ, मान और मद से युक्त होता है। जो हमारे पास नहीं है, परंतु उसके होने का अभिमान भी हम यदि करने लगें तो यह 'दंभ' कहलाता है। अपने आप को श्रेष्ठ, बाकियों से विशिष्ट होने का भाव

'अभिमान' कहलाता है और स्वयं के सौंदर्य, धन, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य इत्यादि के ऊपर निरंतर गर्व का भाव 'मद' कहलाता है।

इन तीनों में सूक्ष्मतम अंतर है और आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति इन तीनों से ही युक्त होते हैं। कल्पना की जा सकती है कि इनमें से यदि कोई एक ही अवगुण मनुष्य के व्यक्तित्व में हो तो ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व रुग्ण हो जाता है और यदि ये सारे ही अवगुण एक मनुष्य के भीतर आ जाएँ तो उसका व्यक्तित्व कितना विकृत और कितना अधोगामी हो जाएगा।

जिसके पास दंभ, मद एवं मान से युक्त व्यक्तित्व हो—ऐसा व्यक्ति जीवन में कोई प्रगति नहीं कर पाता; क्योंकि उसकी स्वयं की गलतियों को देखने की, उनको सुधारने की एवं अच्छी व सच्ची शिक्षाओं पर अमल करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। ऐसा व्यक्ति सदा स्वयं को ठीक मानता है और दूसरे को गलत मानता है। जिसका पूरा चिंतन स्वयं की महत्त्वाकांक्षाओं के पोषण में और स्वयं के अहंकार की पूर्ति के पोषण में लगा हो वो स्वयं को कभी गलत और दूसरे को कभी सही कैसे मान सकता है?

इसीलिए ऐसे लोग सत्यान्वेषण को भी विवादों में बदल देते हैं; क्योंकि उनकी अभीप्सा सत्य को पाने की कम और अपने अहंकार को प्रदर्शित करने की ज्यादा होती है। आसुरी संपदा वाले व्यक्तियों के स्वभाव का ये मूल और आधारभूत लक्षण होता है। इसीलिए ऐसे व्यक्तित्व वाले लोग कभी सच्चा शिष्य या सुपात्र भक्त नहीं बन पाते; क्योंकि वैसा बनने के लिए अहंकार का विसर्जन, ग्रहणशीलता, झुकने को तैयार होना प्रमुख लक्षण हैं। जो स्वयं की गलतियाँ देखने को और उनको सुधारने को तैयार होगा वो एक बच्चे से भी सीख लेगा; जबकि आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य जो दंभ, मद एवं मान के नशे में चूर होंगे—वे भगवान के पास रहकर भी खाली हाथ ही लौटे आते हैं।

इसीलिए जब दुर्योधन और अर्जुन, दोनों भगवान श्रीकृष्ण के पास युद्ध से पहले पहुँचे तो दुर्योधन उनके सिर की ओर खड़ा हुआ और अर्जुन उनके चरणों में बैठे। दुर्योधन ने भगवान श्रीकृष्ण की सेना माँगी तो अर्जुन ने भगवान को ही माँग लिया। इस चयन का क्या परिणाम निकला—वो सभी जानते हैं। आसुरी संपदा वाला व्यक्ति, जो यह सोचता है कि मैं ही सही हूँ—वह यहाँ कुछ सीख नहीं पाता और अज्ञानी ही रह जाता है; जबकि दैवी संपदा वाला व्यक्ति सदा सीखता ही चला जाता है और उसके पास सागर के समान सदा भरा रहने वाला एवं सबको प्रदान करने वाला ज्ञान हो जाता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी संपदा वाला व्यक्ति दंभ, मद एवं मान से युक्त होकर कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का सहारा लेकर अपने सारे जीवन में भूलता व भटकता ही रहता है। कामनाएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं; क्योंकि उनका स्वभाव ही कभी पूर्ण न होना है। उन्हें कभी भरा नहीं जा सकता है, इसीलिए वे दुष्पूर कही जाती हैं। यदि वासनाओं को हम पूर्ण न करें तो वो बार-बार मन के सामने आती हैं, हमें तड़पाती हैं और कहती हैं कि पूरा करो। यदि उन्हें पूरा कर दिया जाए तो तड़प यह होती है कि दोबारा पूरा करो। दोबारा की चाहत तिबारा में, तिबारा की चौबारा में और चौबारा की चाहत सौबारा में बदल जाती है।

इसीलिए श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं कि ये कामनाएँ अनंत हैं और दुष्पूर हैं, कभी पूरी नहीं होने वाली हैं और इसीलिए आसुरी वृत्ति वाले लोग इन्हीं को पूर्ण करने के लिए निरंतर भटकते ही रहते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो व्यक्ति अपना जीवन कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं को पकड़ने में लगा रहा है—उसका दुःखी होना सुनिश्चित है। सुनिश्चित इसलिए है कि मृग-मरीचिका के पीछे भागने वाले को एक दिन थक कर गिर जाना ही होगा। जो पूरा नहीं होने वाला, उसके पीछे दौड़ने वाला दुःख ही पाएगा; इसीलिए ऐसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य दुःख ही पाते हैं।

ऐसे व्यक्ति मन में दुःख पाते हैं, पर उनका अहंकार उनको यह स्वीकार नहीं करने देता कि वे गलत पथ पर हैं, बल्कि वो दुनिया को दिखाने के लिए स्वयं को सुखी प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति फिर मिथ्याचरण के दुराग्रह के शिकार हो जाते हैं। केंद्र में अहंकार है, परिधि में कभी न पूरी होने वाली वासनाएँ हैं, इसलिए यह दौड़ अनंत काल तक चलती रहती है, पर वे इसी दुराग्रह में पड़े रहते हैं कि यही जीवन है, यह मिथ्याचरण ही जीवन का सार है। ऐसे आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य सदा असंतुष्ट, दुःखी एवं त्रस्त रहते हैं—ये ही उनकी भवितव्यता बन जाते हैं। (क्रमशः)

गौ आधारित संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था का हो व्यापक प्रसार

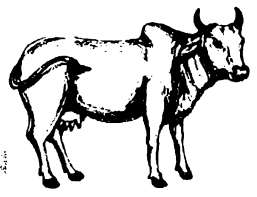

भारतीय संस्कृति में गौ की महिमा अपरंपार है। गौ को यहाँ परम सात्त्विक जीव माना गया है, इसे माँ का दरजा दिया गया है, भगवान शिव के वाहन के रूप में नंदी को धर्म का प्रतीक माना गया है तथा सभी देवी-देवताओं का वास गोमाता के शरीर में बताया गया है। इस रूप में गोमाता को परम तीर्थ का दरजा दिया गया है। आश्चर्य नहीं कि पूर्णावतार भगवान श्रीकृष्ण का जीवन गोमाता के इर्द-गिर्द केंद्रित रहा। समुद्रमंथन के दौरान निकले 14 रत्नों में से एक कामधेनु गाय भी थी, जिसे भगवान श्रीकृष्ण अपना ही स्वरूप बताते हैं।

वैदिक काल से गोपालन भारतीय संस्कृति का आधार रहा है। संस्कृति के पाँच प्रमुख प्रतीकों एवं आधारस्तंभों यथा—गुरु, गीता, गौ, गंगा एवं गायत्री में इसकी गणना इसके अतुलनीय महत्त्व के आधार पर ही ऋषियों द्वारा की गई थी। वेद-उपनिषद् काल में गौ के बिना ऋषि आश्रम की कल्पना भी नहीं की जा सकती। गोपालन वैदिक समाज एवं संस्कृति का केंद्रीय तत्त्व था। गोमाता के दुग्ध, दही, घृत, गोबर एवं गोमूत्र से तैयार पंचगव्य को साधना एवं औषधि के एक प्रमुख घटक के रूप में प्रयोग किया जाता था, जिसका चलन आज भी जारी है। आश्चर्य नहीं कि हर युग में महापुरुषों ने गोमाता की महिमा का गान किया और इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन पर बल दिया।

गोपालन का यदि शुद्ध भाव के साथ पालन किया जाए तो यह व्यक्ति ही नहीं—समाज, राष्ट्र एवं विश्व के सर्वांगीण उत्कर्ष का आधार हो सकता है। ग्रामीण जीवन का तो यह आधारस्तंभ ही है। शारीरिक स्वास्थ्य एवं निरोगिता में गोदुग्ध, घृत एवं दही के सेवन का महत्त्व सर्वविदित है। गाय के गोबर में परमाणु विकिरणों तक को निरस्त करने की क्षमता को वैज्ञानिक आधार पर प्रमाणित किया जा चुका है। गोमूत्र औषधीय गुणों से भरा हुआ है। ऐसे ही गौ का संग-सान्निध्य एवं इसके उत्पादों का सेवन मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से व्यक्ति का कायाकल्प करने वाला पाया गया है।

गोपालन पर आधारित संस्कृति के माध्यम से परिवार एवं समाज में सात्त्विक भावों का प्रसार, आज के वैचारिक प्रदूषण से दूषित होते युग में एक बहुत बड़ा कार्य है। साथ ही गौ-उत्पाद आर्थिक स्वावलंबन के सुदृढ़ आधार हो सकते हैं। शोध के आधार पर जैविक कृषि की सर्वांगीण सफलता देशी नस्ल की गाय पर केंद्रित मानी जा रही है, जिसमें गाय के गोबर से लेकर गोमूत्र का बहुतायत में उपयोग किया जाता है। इन सब लाभों के आधार पर ग्रामीण जीवन के उत्थान से जुडे कार्यक्रमों की केंद्रीय धुरी के रूप में गोपालन की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है, लेकिन देश में इसकी वर्तमान स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं है।

आज भी व्यापक स्तर पर गोपालन उपेक्षा का शिकार है। शहरों में आवारा पशु के रूप में जहाँ-तहाँ इसे टहलते देखा जा सकता है। कुछ अज्ञानतावश तो कुछ व्यक्ति की अदूरदर्शिता एवं लोभवृत्ति के कारण गोपालन में विकृति आ चली है। गाय से अधिक-से-अधिक दूध एवं लाभ लेने की वृत्ति के चलते पारंपरिक रूप से उपलब्ध देसी गायों की उपेक्षा हो रही है तथा कुछ नस्लें तो विलुप्ति के कगार पर हैं।

इनके स्थान पर ऐसी नस्लों की गायों के पालन का चलन बढ़ चला है, जिनसे अधिक दूध एवं तात्कालिक आर्थिक लाभ मिलता हो, लेकिन दूरगामी दृष्टि से इनसे लाभ की तुलना में हानि अधिक हो रही है। न इनके दुग्ध में वो स्वास्थ्यवर्द्धक गुण रहते हैं, न ही सात्त्विकता का भाव, जिस कारण इनका स्वास्थ्यवर्द्धक एवं आध्यात्मिक महत्त्व माना जाता रहा है। इस परिस्थिति में शुद्ध देशी नस्लों के गोधन के संवर्द्धन एवं प्रसार की आवश्यकता है। शांतिकुंज से युग निर्माण आंदोलन के अंतर्गत इस दिशा में नैष्ठिक प्रयास चल रहे हैं, जो युगऋषि की दूरदर्शी सोच पर आधारित हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के जीवन में गोमाता का विशेष स्थान रहा है। बाल्यावस्था से गौ को खिलाए गए जौ को गोबर से निकालकर धोकर-पीसकर बने आटे की रोटी पर पुरश्चरण उनकी साधना का प्रमुख आधार रहा। इसी के साथ आँवलखेड़ा, आगरा एवं गायत्री तपोभूमि, मथुरा से

लेकर शांतिकुंज में गोशालाओं की स्थापना का क्रम चलता रहा और इनके संवर्द्धन के निमित्त पूरी योजना के साथ कार्य चल रहा है।

प्रारंभ में शांतिकुंज से संचालित रचनात्मक प्रकोष्ठ और तदोपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय के ग्राम प्रबंधन विभाग के अंतर्गत गोशाला एवं गौ-उत्पाद पर आधारित ग्रामीण स्वावलंबन के प्रयोग चल रहे हैं, जिनके पाठ्यक्रम से लेकर प्रशिक्षण की व्यवस्था भी उपलब्ध है। इन प्रयासों के आधार पर देश भर में कई दर्जन गोशालाएँ स्थापित हो चुकी हैं, जो अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं।

यहाँ आकर इन प्रयोगों को देखा जा सकता है। यहाँ पर उपलब्ध प्रशिक्षण में भाग लेकर अपने क्षेत्र में गौ आधारित स्वावलंबन के प्रयोगों को आगे बढ़ाया जा सकता है। युवा छात्र-छात्राएँ यहाँ चल रहे पाठ्यक्रम का हिस्सा बनकर इस दिशा में अकादमिक एवं सामाजिक स्तर पर गंभीर शोध-अध्ययन एवं प्रसार के कार्यों में भाग लेकर रोजगार से लेकर समाज-संस्कृति के सेवाकार्य में अपना योगदान दे सकते हैं और अपने क्षेत्र में गौ आधारित संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था का मॉडल स्थापित कर सकते हैं।

जो किसान यहाँ से कुछ सीख-समझकर अपने क्षेत्र में गौ संवर्द्धन के क्षेत्र में कुछ कार्य करना चाहते हैं, ऐसे लोगों के लिए 15 दिवसीय प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था भी है। आवश्यकता हर घर में गोपालन तथा हर ग्राम में गोशालाओं की स्थापना की है तथा इनको संवर्द्धित करने की है, जिससे स्वावलंबी ग्रामीण जीवन का सपना साकार हो सके तथा भारतीय संस्कृति की सनातन धारा का प्रवाह अपनी सात्त्विक आभा के साथ समूचे राष्ट्र एवं विश्व में प्रसारित हो सके। ❑

एक चित्रकार को किसी सौम्य किशोर का चित्र बनाना था। उसने बहुत घूम-फिरकर ऐसे किशोर को ढूँढ़कर उसका चित्र बनाया। चित्र की खूब प्रशंसा हुई।

कुछ वर्षों पश्चात उसे एक अत्यंत क्रूर अपराधी का चित्र बनाने की इच्छा हुई। वह बंदीगृहों में घूम-घूमकर सर्वाधिक दुष्ट आकृति वाला व्यक्ति ढूँढ़ने लगा। एक बंदीगृह में उसे ऐसा ही व्यक्ति दिखा, जिसका उसने चित्र बनाया। इस चित्र की भी खूब प्रशंसा हुई।

सज्जनता और दुष्टता की झलक दिखाते इन दो परस्पर प्रतिकृतियों का जोड़ा चित्र जगत में बहुत प्रख्यात हुआ। कुछ समय पश्चात वही दुष्ट व्यक्ति चित्रकार से मिलने पहुँचा। चित्रकार ने उसका परिचय पूछा तो वह बोला—"ये दोनों चित्र आपने मेरे ही बनाए हैं।"

यह सुनकर चित्रकार अवाक् रह गया। उसने पूछा—"इतना परिवर्तन कैसे हुआ? तुम्हारी सौम्यता, क्रूरता में कैसे बदल गई?" यह सुनकर उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह रुँधे गले से बोला—"बुरी संगति से ही मेरी यह दुर्गति हुई।" तभी तो कहा जाता है—संगत से गुण आवत हैं, संगत से गुण जात।

जीवन को बचाना है तो वृक्षारोपण करना पड़ेगा

प्रदूषण आज एक महामारी का रूप लेता जा रहा है। आज देश के कई बड़े शहर प्रदूषण के चलते बुरी तरह से हाँफ रहे हैं। पिछले कुछ समय से देश में पर्यावरण का मिजाज लगातार बिगड़ रहा है। इसका खामियाजा देश ने किसी-न-किसी बड़ी आपदा के रूप में चुकाया है। पर्यावरण संबंधी कई अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टों में यह स्पष्ट हो चुका है कि भारत में कई शहर दुनिया के सर्वाधिक प्रदूषित शहरों में शामिल हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के वायु प्रदूषण डाटाबेस के अनुसार विश्व के सर्वाधिक प्रदूषित 15 शहरों में से 14 भारत में हैं। इनमें वाराणसी, कानपुर, लखनऊ, पटना तथा गया शामिल हैं। देश की राजधानी दिल्ली की हालत तो अक्सर गैस चैंबर सरीखी होती रही है, जहाँ जब-तब जहरीली धुंध का गुबार देखने को मिलता है। इससे किसी स्वस्थ व्यक्ति के लिए साँस लेना मुश्किल हो जाता है।

मेडिकल जर्नल—'दि लेंसेट' की एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में वायु प्रदूषण के चलते प्रतिवर्ष दस लाख से ज्यादा लोग मौत के मुँह में समा जाते हैं। कार्बन उत्सर्जन मामले में दिल्ली दुनिया के 30 शीर्ष शहरों में शामिल है। यहाँ पहाड़नुमा कूड़े के ढेरों से निकलती जहरीली गैसें, औद्योगिक इकाइयों से निकलते जहरीले धुएँ के अलावा सड़कों पर वाहनों की बढ़ती संख्या कार्बन उत्सर्जन का बड़ा कारण है।

कहा जाता है कि अगर दिल्ली तथा देश के अन्य अत्यधिक प्रदूषित शहरों में वायु प्रदूषण पर नियंत्रण पाना है तो लोगों को निजी वाहनों का प्रयोग कम कर सार्वजनिक परिवहन को अपनाना चाहिए। साथ ही बड़े पैमाने पर पौधारोपण को बढ़ावा देकर हरियाली बढ़ानी चाहिए, लेकिन हमें यह भी देखना होगा कि वास्तव में देश में पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए हो क्या रहा है। पर्यावरण संरक्षण के लिए बड़े-बड़े दावे और वादों के बावजूद वृक्षों के विनाश का सिलसिला तेजी से बढ़ रहा है।

हरियाली की कमी के कारण पर्यावरण का संतुलन डगमगाने से प्रकृति का प्रकोप बार-बार सामने आ रहा है। दूसरी ओर सरकारें शहरी विकास, देश के विकास को गति देने या लंबे-चौड़े एक्सप्रेस वे बनाने के नाम पर लाखों वृक्षों का सर्वनाश करने का आदेश जारी करने में विलंब नहीं करती हैं। कुछ माह पहले दिल्ली में 16500 ऐसे ही पेड़ काटे जाने का आदेश सुनाया गया था, किंतु चिपको आंदोलन की तर्ज पर दिल्लीवासियों ने व्यापक स्तर पर जन-अभियान चलाकर सरकार को अपना निर्णय वापस लेने को विवश कर इन वृक्षों को कटने से बचा लिया, लेकिन देश में हर जगह स्थिति ऐसी नहीं है। हिमालयी क्षेत्र हो या गंगा तथा उसकी सहायक नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र, हर जगह हजारों की संख्या में विशालकाय वृक्ष बेरहमी से काटे जा रहे हैं। चार धाम यात्रा को सुखद बनाने के लिए सड़कों के चौड़ीकरण के लिए करीब नौ सौ किलोमीटर के दायरे में वर्षों पुराने लाखों हरे-भरे वृक्ष काट डाले गए।

माना कि देश के विकास को रफ्तार देने के लिए चौड़े एक्सप्रेस वे बनाना समय की माँग है, किंतु सरकारी मशीनरी इस बात का जवाब कब देगी कि विकास के नाम पर बेरहमी से देश भर में लाखों वृक्षों के विनाश के चलते पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। ऐसे में हरे-भरे वृक्षों के विनाश के कारण मानवसहित समस्त प्राणी जगत का जीवन कैसे सुरक्षित रहेगा। जीवन ही सुरक्षित नहीं रहेगा तो यह विकास किस काम का?

हम क्यों नहीं समझना चाहते कि जैसे-जैसे सघन वनों का दायरा घटेगा, देश में बाढ़, सूखा, स्मॉग जैसी प्राकृतिक आपदाओं का दायरा बढ़ता जाएगा। वृक्ष न केवल हमें भावनात्मक तथा आध्यात्मिक शांति प्रदान करते हैं, बल्कि मिट्टी को रोके रखकर हमें बाढ़ के खतरे से बचाते हैं। ये कार्बन-डाइऑक्साइड को अवशोषित कर आस-पास के वायुमंडल को स्वच्छ रखते हैं। वर्षा कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। विषैले पदार्थों को अवशोषित करते हुए पोषक तत्त्वों का नवीनीकरण करते हैं। हमें खाद्य सामग्री तथा औषधियाँ उपलब्ध कराते हैं। साथ ही ये हमें उत्तम स्वास्थ्य भी प्रदान करते हैं तथा वन्य जीवों को आश्रय प्रदान करते हैं।

यदि विकास-कार्यों को गति प्रदान करने के लिए सड़कों का चौड़ीकरण करना ही है तो क्या कोई ऐसा रास्ता नहीं तलाशा जाना चाहिए, जिससे अधिकांश वृक्षों को बचाते हुए विकास-कार्यों के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। न्यूयार्क के पर्यावरण संरक्षण विभाग द्वारा जारी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि 100 विशाल वृक्ष प्रतिवर्ष 53 टन कार्बन-डाइऑक्साइड तथा 200 किलोग्राम अन्य वायु प्रदूषकों को दूर करते हैं और 5,30,000 लीटर वर्षा जल को थामने में भी मददगार साबित होते हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार घर में सुनियोजित ढंग से लगाए जाने वाले वृक्ष न केवल गरमियों में एसी की खपत में 56 फीसदी की कमी लाते हैं, बल्कि सरदियों में ठंढी हवाओं को भी रोकते हैं। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि वृक्षों से भरे परिवेश में रहने वाले व्यक्ति ज्यादा सुरक्षित तथा मिलनसार स्वभाव के होते हैं।

एक अन्य रिपोर्ट में बताया गया है कि किसी भी वृक्ष के वजन में एक ग्राम की वृद्धि से ही उससे 2.66 ग्राम अतिरिक्त ऑक्सीजन मिलती है। भारतीय वन सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में सघन वनों का क्षेत्रफल तेजी से घट रहा है। सन् 1999 में सघन वन 11.48 फीसदी थे, जो आज घटकर मात्र 2.61 फीसदी ही रह गए। रिपोर्ट के मुताबिक देश के कई राज्यों उत्तराखंड, मिजोरम, तेलंगाना, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, सिक्किम, त्रिपुरा, हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, बिहार, झारखंड, दादर नागर हवेली इत्यादि में वन क्षेत्र तेजी से कम हुए हैं।

सघन वनों का दायरा सिमटते जाने के कारण ही वन्यजीव शहरों-कस्बों का रुख करने पर विवश होने लगे हैं। नेचर जर्नल की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में इस समय करीब 35 अरब वृक्ष हैं। इस लिहाज से प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में करीब 28 वृक्ष आते हैं। यह आँकड़ा पढ़ने और सुनने में जितना सुखद प्रतीत होता है, उतना है नहीं; क्योंकि इन 35 अरब वृक्षों में से अधिकांश सघन वनों में हैं, न कि देश के विभिन्न शहरों या कस्बों में। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई के कारण सघन वनों का क्षेत्रफल भी तेजी से घट रहा है।

किसी भी क्षेत्र में वातावरण को शुद्ध बनाए रखने के लिए वहाँ वन-क्षेत्र सघन होना चाहिए। कैग की एक रिपोर्ट पर नजर डालें तो दिल्ली पहले से ही करीब नौ लाख वृक्षों की कमी से जूझ रही है। पिछले पाँच वर्षों में हरियाली घटने से दिल्ली में वायु प्रदूषण करीब चार सौ फीसदी बढ़ा है। देश में मौसम चक्र जिस तेजी से बदल रहा है, जलवायु-संकट गहरा रहा है, ऐसी पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने का एक ही उपाय है वृक्षों की सघनता।

वायु प्रदूषण हो या जल प्रदूषण अथवा भू-क्षरण, इन समस्याओं से केवल ज्यादा-से-ज्यादा वृक्ष लगाकर ही निपटा जा सकता है। स्वच्छ प्राणवायु के अभाव में लोग तरह-तरह की भयानक बीमारियों के जाल में फँस रहे हैं। उनकी प्रजनन-क्षमता पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ रहा है। उनकी कार्यक्षमता भी इससे प्रभावित हो रही है। इन समस्त समस्याओं का एकमात्र समाधान है—वृक्षारोपण एवं अपने आस-पास स्वच्छता बनाए रखना। ❑

अध्यात्म विज्ञान के साधकों को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करना पड़ता है। उन्हें सोचना होता है कि मानव जीवन की बहुमूल्य धरोहर का इस प्रकार उपयोग करना है, जिससे शरीर का निर्वाह लोक व्यवहार भी चलता रहे, पर साथ ही आत्मिक अपूर्णता को पूर्ण करने का चरम लक्ष्य भी प्राप्त हो सके। ईश्वर के दरबार में पहुँचकर सीना तानकर यह कहा जा सके कि जो अमानत जिस प्रयोजन के लिए सौंपी गई थी, उसे उसी हेतु सही रूप में प्रयुक्त किया गया।

— परमपूज्य गुरुदेव

परिव्राजक परंपरा का पुनर्जीवन

(उत्तरार्द्ध)

भारतीय संस्कृति की यह अद्भुत परंपरा रही है कि यहाँ मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलू को ध्यान में रखकर उसके समग्र विकास के लिए एक आध्यात्मिक चिंतन प्रदान किया गया है। परिव्राजक परंपरा एवं प्रव्रज्या का भाव एक ऐसा ही चिंतन कहा जा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव अपने प्रस्तुत उद्बोधन में इसी परंपरा की सामयिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। विगत अंक में आपने पढ़ा कि वे श्रोताओं को बताते हैं कि परिव्राजक का उद्देश्य मात्र विभिन्न स्थानों में घूमना नहीं, बल्कि एक समग्र स्वास्थ्य का चिंतन सभी को प्रदान करना है। इसके साथ ही परिव्राजक का जीवन-उद्देश्य यह भी है कि वह पापों का निराकरण और पुण्य का संपादन करने की सोच लोगों को प्रदान करे। इसके साथ ही यह परंपरा जनसंपर्क के माध्यम से लोगों को जीवन जीने का सही तरीका भी सिखाती है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

जीवन जीने का सही तरीका सिखाएँ

मित्रो! आप दुनिया को जो सबसे बड़ी सलाह दे सकते हैं, सबसे बड़ा जो दान दे सकते हैं, सबसे बड़ा जो उपकार आप कर सकते हैं, वह एक ही है कि आप जिंदगी जीने का सही तरीका सिखा दें। अगर कोई आदमी जिंदगी जीने का सही तरीका समझ सके, तो मैं समझता हूँ कि उसकी नब्बे प्रतिशत समस्याओं का हल हो सकता है। दस प्रतिशत के लिए तो नहीं कह सकता, जो मुसीबत के रूप में आ जाती हैं। नब्बे प्रतिशत समस्याएँ आदमी की स्वयं की पैदा की हुई हैं, जो उसकी बेअक्ली से पैदा हुई हैं। दस-पाँच फीसदी समस्याएँ समाज की वजह से, किसी चोर, उचक्के की वजह से आती हैं।

यदि उसको जिंदगी जीने की सलाह, मशवरा ऐसा दिया जा सके कि उनका समाधान कैसे किया जा सकता है तो सारी जिंदगी भर के लिए उसके अनेक दुःखों का निवारण हो सकता है, जो आप पैसा दे करके नहीं कर सकते। जो आप कंबल दान या अन्य दान देकर के नहीं कर सकते। हम दवा देंगे, अच्छा कर देंगे। नहीं, आप अच्छा नहीं कर सकते। थोड़े समय के लिए दवा से राहत दे सकते हैं।

हमारा आहार-विहार ठीक नहीं है, इसलिए हम कल फिर बीमार पड़ेंगे। आज बुखार अच्छा करेंगे, कल दूसरी बीमारी आ जाएगी, परसों तीसरी आ जाएगी; क्योंकि हमारा आचरण, हमारा रहन-सहन ठीक नहीं है। आप हमको दवाई देकर के टेंपरेरी तो ठीक कर सकते हैं, पर आप कोई समस्या का हल नहीं कर सकते हैं। आप हमारी सेहत को अच्छा करने की गारंटी ले सकते हैं और यकीनन आप छाती ठोंक करके कह सकते हैं कि हम आपकी सेहत अच्छी कर देंगे।

सुनना नहीं, मानना

मित्रो! इसकी अपेक्षा आप हमको सेहत की रखवाली करने का ज्ञान दें। हमको इस बात के लिए तैयार करें कि हम आपकी बात केवल सुने ही नहीं; अपितु मान भी लें। आदमी सुनने पर यकीन करता है। रामायण सुनने पर यकीन करता है। भागवत सुनने पर यकीन करता है। गीता सुनने पर

यकीन करता है। सत्संग सुनने पर यकीन करता है। सुनने से नहीं बेटे, मानने से बात बनती है। आप लोगों को मानने के लिए रजामंद कर लें और अगर आपके पास इतनी अक्ल हो, तो आप लोगों की समस्याएँ सुनकर उनका मार्गदर्शन कर सकें, तो मैं नहीं समझता कि इससे बड़ा पुण्य कोई और भी हो सकता है।

मित्रो! ब्राह्मण सबसे बड़ा पुण्यात्मा होता है। सबसे बड़ा दानी कौन होता है? सेठ। नहीं, सेठ दानी नहीं हो सकता। सेठ जो चीजें देता है, वो टिकाऊ नहीं हैं। वो ठहरती नहीं हैं। अनाज खाकर के हमारी भूख की समस्या हल नहीं होती। कपड़ा हम आपसे ले लें, तो हमारी समस्या हल नहीं हुई। फोकट की दवा से बीमारी की समस्या हल नहीं हुई। फिर दान से कोई फायदा? नहीं, दान से कोई फायदा नहीं है।

सच्ची बात तो यह है कि उससे नुकसान बहुत है। देने वाले का नुकसान यह है कि वह घमंडी हो जाता है। बार-बार सिर उठाकर कहता है कि देखिए उस धर्मशाला में हमने 5100 रुपये दिए थे। आप कभी जाएँ तो वहीं ठहरना—चुन्नालाल-मुन्नालाल की धर्मशाला में। क्यों साहब! उसमें क्या खास बात है? उसमें हमारे नाम का पत्थर लगा हुआ है। हमने अपने पिता के नाम पर 5100 रुपये दिए हैं। देखना कैसा जोर का पत्थर लगा हुआ है। दान देने वाला घमंडी आदमी अपना यश बार-बार थोपना चाहता है। हर बार अपनी प्रशंसा कराना चाहता है। हर जगह बार-बार अपना विज्ञापन करना चाहता है। इसलिए दान देने से आदमी घमंडी होता है—एक और दूसरा—जिसको दिया जाता है, उसका स्वाभिमान खतम हो जाता है। आपसे आदमी ने रोटी तो ले ली, पर उसने अपना स्वाभिमान गँवा दिया।

कैसा हो दान?

मित्रो! किसी ने, किसी के सामने हाथ पसारा, समझ लो उसकी इज्जत चली गई, उसका वर्चस् चला गया। उसका गौरव, उसका सम्मान चला गया। आपने उसका मान छीन लिया, स्वाभिमान छीन लिया और अपना अहंकार बढ़ा लिया। दोनों को इतनी परेशानी पैदा करने के बाद अगर आपने थोड़े से पैसे दे दिए, तो क्या फायदा हुआ? तो महाराज जी! आप दान के लिए मना कर रहे हैं? मना नहीं करता बेटे, मैं तो यह कहता हूँ कि दान देने के तरीके क्या होने चाहिए?

दान वह होना चाहिए, जिससे दूसरे आदमी के व्यक्तित्व का विकास होता हो। पैसा भी देना चाहते हैं, तो भी आप इसी तरीके से दीजिए, जिससे किसी आदमी के व्यक्तित्व में शालीनता का संवर्द्धन होता हो। उसकी समस्याओं के समाधान निकलते हों। किसी भिखारी की सहायता तो करनी चाहिए, पर घुमाकर कीजिए। गांधी जी ने खादी का आंदोलन चलाया। लोगों ने कहा कि आप महँगी खादी खरीदिए। क्यों? महँगी खादी इसलिए खरीदें, ताकि जो श्रमिक हैं, मजदूर हैं, उन्हें बिना स्वाभिमान गँवाए ज्यादा पैसा मिल सके। मजदूरी का फायदा मिल सके।

एक दिन आँसू आँख से बोला—"तुम भी कैसी माता हो, जो अपने बेटों को जन्म देते ही दूर फेंक देती है। इससे तो अच्छा होता कि तुम हमें जन्म ही न देतीं।"

आँख बोली—"वत्स! तुम माँ का हृदय समझ न सकोगे। तुम्हारे चले जाने से मेरा सब कुछ चला जाता है, पर फिर भी मैं मोहग्रस्त नहीं हूँ। तुम्हें बाहर न निकालूँ तो तुम्हें सम्मान कैसे मिलेगा?"

माँ के वचन बेटे को आशीर्वाद स्वरूप लगे। उसने अनुभव किया कि संकीर्णता को छोड़े बिना विराट का अनुभव नहीं किया जा सकता।

नहीं साहब! हम तो दान देंगे। मत दीजिए दान। बड़ा दानी आया? मैं तो एक रुपये की सोलह रोटियाँ बाँटूँगा। कहाँ बाँटेगा? वहाँ हर की पौड़ी पर। बड़ा राजा कर्ण बनकर आया है, सोलह रोटियाँ बाँटेगा। सारे-के-सारे गाँव वालों को दिखाता रहता है कि देखिए साहब! सोलह रोटियाँ बाँटकर आए हैं। उन्हें स्वावलंबी बनाने के लिए कुछ पैसे खरच नहीं कर सकता। नहीं साहब! मैं क्यों उन्हें स्वावलंबी बनाऊँगा? गांधी जी ने कहा था कि अगर आपको कुछ देना

है, तो महँगी खादी खरीदिए; ताकि श्रमिक आपसे फायदा तो उठा ले, पर अपना स्वाभिमान नहीं गँवाए। उसे इस बात का पता न चले कि किसी ने हमारी मदद की है।

इसलिए बेटे मैं यह कहा रहा था कि दान देने के तरीकों में अगर आप गरीब हैं, तो हर्ज की कोई बात नहीं है। आपकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, तो भी कोई बात नहीं है, पर आपके पास ज्ञान तो है। समझ तो है। समझ दुनिया की सबसे कीमती चीज है। आज की सारी-की-सारी समस्याएँ, कठिनाइयाँ मनुष्य के सामने समझ की कमी की वजह से हैं। इसलिए समझ की कमी को पूरा करने के लिए आप जब परिव्राजक योजना में निकलते हैं, घूमते हैं, तो आप जो कष्ट उठाते हैं, इसमें आपके पापों का प्रायश्चित हो जाता है।

प्रायश्चित तप की परंपरा

मित्रो! ऋषियों ने, शास्त्रकारों ने पाप के प्रायश्चित का सबसे बेहतरीन तरीका एक ही बताया है कि आप कठिनाई उठाइए, समय खरच कीजिए, त्याग कीजिए और समाज को जो नुकसान पहुँचाया है, उसे पूरा करने के लिए बैलेंस बराबर कीजिए। नहीं साहब! हम तो गंगा जी में नहाएँगे और पाप का प्रायश्चित हो जाएगा। बेटे, यह गलत बात है। यदि गंगा जी में नहाने से पाप का प्रायश्चित हो जाएगा, तो फिर पाप का दंड किसी को भी नहीं मिलेगा।

इसका मतलब यह हुआ कि गंगा जी हर प्राणी के लिए इस बात को प्रोत्साहित करती हैं कि आप पाप कीजिए और आपको पाप का दंड नहीं मिलेगा। आप एक डुबकी मार लीजिए और आपको पाप से छुट्टी मिल जाएगी। यह गलत बात है। अगर गंगा जी ऐसा कहती हैं, तो मैं कहता हूँ कि गंगा जी पुण्य देने वाली नहीं हैं, पाप को फैलाने वाली हैं, जो यह कहती हैं कि आप एक डुबकी मार लीजिए और हम आपको पापों से मुक्त कर देंगे। ऐसा नहीं हो सकता और कभी नहीं हो सकता।

मित्रो! क्या होना चाहिए था? प्रायश्चित की परंपरा चलनी चाहिए थी। प्रायश्चित की परंपरा में सबसे अच्छा प्रायश्चित चांद्रायण व्रत के साथ-साथ में जिसे हम प्रत्येक पत्रिका में छापते हैं, वह यह हो सकता है कि आप स्वयं कठिनाई उठाएँ, तप करें। पैदल चलने का तप, ठंढक में जाने का तप, रास्ता नापने का तप, धूप में चलने का तप, ठंढक बरदाश्त करने का तप करें। नहीं साहब! हम तो गरम पानी से नहाएँगे। गरम पानी कहाँ रखा है? नहीं, हम तो गरम पानी से नहाते हैं। तो अब ठंढे पानी से नहा। यहाँ, कहाँ रखा है गरम पानी? इसलिए सैकड़ों तरह के तप हैं। कभी रोटी मिली, कभी नहीं मिली। कभी कच्चा खा लिया, कभी पक्का खा लिया।

ये सारे-के-सारे तप हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से और सांसारिक दृष्टि से इनके जो लाभ हैं, वे बहुत हैं। परिव्राजक योजना से तप का, प्रायश्चित का उद्देश्य तो पूरा होता ही है, इससे समाज का भी संवर्द्धन होता है। पर्यटन अपने आप में एक व्यवसाय है।

भारत सरकार और दूसरी सरकारें पर्यटन को एक व्यवसाय बनाती हैं, ताकि घुमक्कड़ लोगों, यात्री लोगों का पैसा इधर-का-उधर, उधर-का-इधर चला जाए और कुछ रेलवे को मिल जाए, कुछ मजदूरों को मिल जाए, कुछ दुकानदारों को मिल जाए। पैसा खरच हो जाए। पैसे का पहिया घूमने लगे। सामाजिक दृष्टि से भी पर्यटन का आनंद मिल जाता है। परिव्राजक योजना में भी यह आनंद मिलता है। दुनिया का यह सबसे ज्यादा श्रेष्ठ मनोरंजन है। मनोरंजन के लिए सैकड़ों बातें हो सकती हैं, लेकिन जितना ज्यादा मनोरंजन, जितना अच्छा मनोरंजन, जितना बढ़िया मनोरंजन, जितना सात्त्विक मनोरंजन, जितना निर्दोष मनोरंजन परिव्राजक का है, उतना ज्यादा और कहीं नहीं है।

मित्रो! पर्यटन का धंधा आर्थिक दृष्टि से भी उपयोगी है और राष्ट्रीय दृष्टि से भी उपयोगी है। परिव्राजक भी उससे जुड़ा हुआ है। जगद्गुरु शंकराचार्य ने देखा कि देश विशृंखलित हो जाएगा। सांप्रदायिकता फैल जाएगी। प्रांतवाद फैल जाएगा। प्रांतवाद की जड़ें मजबूत होती चली जाएँगी। भाषावाद की जड़ें मजबूत होती चली जाएँगी। इसलिए उन्होंने तीर्थयात्रा का ऐसा क्रम बनाया, जिस बहाने एक स्थान के आदमी दूसरी जगह और दूसरी जगह के तीसरी जगह सारे भारतवर्ष की परिक्रमा करते चलें।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने दूर की निगाह फेंकी। उन्होंने एक तीर्थ पश्चिमी हिस्से में, एक तीर्थ पूर्वी हिस्से में, एक तीर्थ उत्तरी हिस्से में और एक तीर्थ की दक्षिणी हिस्से में स्थापना की। दक्षिण में रामेश्वरम्, पश्चिम में द्वारका, उत्तर में बदरीनाथ और पूर्व में जगन्नाथ तीर्थ की स्थापना की। सारा भारतवर्ष घूमने के लिए उन्होंने तीर्थ बना दिए। आप परिक्रमा लगाइए। इससे क्या फायदा होगा? एक प्रांत के

आदमी, दूसरे प्रांत के लोगों से मिलेंगे। दूसरे प्रांत के तीसरे और तीसरे प्रांत के चौथे प्रांत के लोगों से मिलेंगे। इससे भाईचारा बढ़ेगा, मुहब्बत बढ़ेगी, जानकारी बढ़ेगी। जानकारी के अभाव में हर जगह इतना क्षेत्रवाद फैल जाएगा कि आदमी का जीना मुश्किल हो जाएगा और हम रोटी-पानी से वंचित हो जाएँगे।

मित्रो! क्षेत्रों के हिसाब से, भाषाओं के हिसाब से जगद्गुरु शंकराचार्य ने यह आवश्यक समझा कि आदमी पर्यटन करता रहे, घूमता रहे। घूमने से कितने ज्ञान प्राप्त होते हैं, यह आप जानते हैं? सवेरे भी मैंने प्रतिज्ञा कराई थी—"चरैवेति .....चरैवेति।" चलिए-चलिए। जो आदमी पड़ा रहता है, उसका भाग्य भी पड़ा रहता है। शतपथ ब्राह्मण की उक्ति है—"जो आदमी चारपाई पर पड़ा रहेगा, उसका भाग्य भी पड़ा रहेगा और जो आदमी खड़ा हो जाएगा, उसका भाग्य भी खड़ा हो जाएगा और जो आदमी चलने लगेगा, उसका भाग्य भी चलने लगेगा। मनुष्य का व्यक्तित्व और मनुष्य का भविष्य इस बात से ताल्लुक रखता है कि आदमी चलता है कि नहीं चलता।"

बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जो आपके परिव्राजक आंदोलन से जुड़ी हुई हैं और जिसके साथ आपका स्वार्थ जुड़ा हुआ है। परमार्थ तो मैं क्या कह सकता हूँ? परमार्थ तो एक ही है। बादल अगर पानी बरसाना बंद कर दें, तो जमीन पर तबाही आ जाएगी। बादल अपना घुमक्कड़पन बंद कर दें, समुद्र से पानी लाकर के बरसाना बंद कर दें, तो दुनिया में तबाही आ जाएगी। हवा अपने बैग में-थैले में ऑक्सीजन लादकर सप्लाई बंद कर दे, तो प्राणियों का जीवन दूभर हो जाएगा। हवा दूधवाले के तरीके से लाखों रुपये की ऑक्सीजन थैले पर लाद कर घूमती है और कहती है कि आपको ऑक्सीजन चाहिए, लीजिए, आप भी लीजिए। हवा हर आदमी को ऑक्सीजन बाँटती हुई चली जाती है। हवा ऑक्सीजन बाँटना बंद कर दे तब दुनिया में तबाही आ जाएगी। चंद्रमा अपनी चाँदनी बाँटना बंद कर दे, तो दुनिया में तबाही आ जाएगी।

महत्त्वपूर्ण है मनुष्य की भावना

मित्रो! इसी तरीके से ब्राह्मण अगर ज्ञान बाँटना बंद कर दे, तो दुनिया में तबाही आ जाएगी। ब्राह्मण आप किसे कहते हैं? ब्राह्मण मैं आप सबको कहता हूँ। क्यों कहते हैं? इसलिए कहता हूँ कि सिद्धांत के लिए, आदर्शों के लिए, आदमी का ज्ञान संवर्द्धन करने के लिए जो विचारणा, भावना होनी चाहिए, वह आप में है। आदमी का सबसे महत्त्वपूर्ण माद्दा शरीर नहीं है, रोटी नहीं है, सामान नहीं है, कपड़ा नहीं है।

सबसे बड़ी महत्त्वपूर्ण चीज है—आदमी की विचारणा और आदमी की भावना। भावना का, विचारणा का सिंचन और अभिवर्द्धन कितना ज्यादा लाभदायक हो सकता है, उसे आप समझते नहीं हैं। इससे बड़ा उपकार दुनिया के परदे पर कुछ भी नहीं हो सकता। राजा कर्ण के

पथिक फलों से लदे वृक्ष को देखकर बोला—"तुम तो फल-फूल रहे हो और मैं भूखा मर रहा हूँ। भगवान ने मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया?"

वृक्ष हँसते हुए बोला—"तुम यदि मेरे पतझड़ के कष्टों को देखते तो अनुभव कर पाते कि ये फल मैंने कितनी कठिन तपश्चर्या से प्राप्त किए हैं। तुम भी वैसा पुरुषार्थ करके देखो, उसी से जीवन में समृद्धि और संतुष्टि आती है।"

बारे में सुना है? राजा कर्ण रोज सवा मन सोने का दान करते थे और मैं आपसे कहता हूँ कि विचारशील व्यक्ति सवा मन ज्ञान का दान करते हैं और अगर सवा मन सोने का दान करने का पुण्य होता होगा एक सवा किलो, तो सवा मन ज्ञानदान का होता होगा—सवा हजार किलो। सवा हजार किलो ज्ञान वितरण करने के साथ-साथ में आप स्वयं इससे लाभान्वित हो सकते हैं। "बाँटन वाले को लगे, ज्यों मेहँदी को रंग।" मेहँदी हाथ से पीसते रहते हैं और दूसरों के हाथ में लगाते हैं, तो स्वयं के हाथ भी

रंग जाते हैं। जो सुगंध का धंधा करते हैं, दूसरों के लिए सेंट बेचते हैं, गुलाब बेचते हैं, उनके अपने कपड़े, अपने हाथ सुगंधित हो जाते हैं।

मित्रो! बाँटन वाले को लगे .....। दूसरों को ज्ञान देने वाले, दूसरों को राहत देने वाले, दूसरों को चरित्र की शिक्षा देने वाले, दूसरों को जीवन को ऊँचा उठाने वाली शिक्षा देने वाले को हया, शरम तो आएगी ही। हम दूसरों को सिखाते हैं, तो हमको भी तो अच्छा बनना पड़ेगा। इच्छा से, जानकारी से, अध्ययन से, स्वाध्याय से, मनन से, चिंतन से भी ज्ञान की वृद्धि होती है और इससे अगर न भी होती हो तो लोक-लाज से भी होती है। हमने आपको रामायण सुनाई थी और उसमें प्रसंग आया कि हम जो कुछ गलत करेंगे, तो खुल्लमखुल्ला नहीं कर सकते। छिपकर करेंगे। देखकर करेंगे कि कोई है तो नहीं। बीड़ी तो पिएँगे, पर वहाँ सड़क पर बैठकर पिएँगे। कोई और तो नहीं देख रहा, कोई वानप्रस्थी तो नहीं खड़ा है।

क्यों साहब! आप वानप्रस्थी तो नहीं हैं? नहीं, हम तो मुसाफिर हैं। अगर कोई वानप्रस्थी आ गए तो? क्यों साहब! क्या बात है? सब ठीक है और एक हाथ से बीड़ी मसलते जा रहे हैं। कम-से-कम आपको शरम तो आएगी। आप पीले कपड़े पहन करके ज्ञान की शिक्षा देने आए हैं, तो दूसरों की तुलना में चरित्र की दृष्टि से आपको किसी तरह तो अच्छा रहना पड़ेगा। आप निर्लज्ज तो नहीं हो सकते। बाबा जी सिनेमा भी देखेगा, तो अपने पीले कपड़े उतारकर—घर पर रख जाएगा। सफेद पायजामा-कुरता पहनकर सिनेमा जाएगा। कमंडलु लेकर बाबा जी सिनेमा नहीं जाएगा। कमंडलु का फजीता हो जाएगा और लोग कहेंगे कि देखो-यह बाबा पैसा माँगता है और सिनेमा देखता है। इसलिए शरम भी करनी पड़ती है। शरम भी एक बंधन है आदमी के ऊपर। शरम से भी आदमी के चाल-चलन को सँभालने के लिए बड़ी मदद मिलती है।

बेअक्ली की समस्या

मित्रो! प्रव्रज्या अभियान के कितने सारे लौकिक और पारलौकिक, सामाजिक और वैयक्तिक आनंद के कितने सारे लाभ बताए गए हैं। वे तो मिलेंगे ही। आपको यह आनंद स्वयं लेने के लिए और दूसरों को बाँटने के लिए कमर कसकर चलना चाहिए। आज के जमाने की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। इससे बड़ी आवश्यकता मैं नहीं जानता। हो सकता है और भी हो सकती हो। आपको ज्ञान बाँटने के लिए और जानकारी बाँटने के लिए प्रव्रज्या पर निकलना चाहिए।

दुनिया की आज जो तबाही है, वह बेअक्ली की तबाही है और किसी बात की है? बेटे, और किसी बात की तबाही नहीं। बस, एक बात की तबाही है, जिसका नाम है—बेअक्ली। बेअक्ली कौन-सी? बेअक्ली वह नहीं, जो स्कूल की पढ़ाई से दूर हो जाती है। स्कूल की पढ़ाई का बेअक्ली से कोई ताल्लुक नहीं है। फिर क्या चीज है? यह तो एक टेकनिक है। जैसे आरा चलाकर लकड़ी चीरना। और बहुत दूसरे धंधे हैं। स्कूली पढ़ाई इसमें क्या काम आती है? बेटे, भौतिक जानकारियाँ मिलती हैं, जैसे—इतिहास, भूगोल, फिजिक्स आदि पढ़ाए जाते हैं। बॉटनी पढ़ाई जाती है। इससे हम जानकारी प्राप्त करते हैं और उस जानकारी को बाजार में बेच करके पैसे कमाए जा सकते हैं और अपना पेट भर सकते हैं।

मित्रो! यह शिक्षा है। यह विद्या नहीं है। हमने तो बी०एस-सी० पास किया है। तो भाई साहब! आप शिक्षित हैं, विद्वान हैं। विद्वान कौन हो सकता है? विद्वान वह हो सकता है, जो जीवन की समस्त समस्याओं के बारे में जानकारी रखता है। मनुष्य जीवन की समस्याओं का समाधान करने के लिए किस तरीके से विचार करना चाहिए। कौन-सा रास्ता अख्तियार करना चाहिए? सही रास्ता अख्तियार करना और विचार करने का तरीका पकड़ लेना, यह आदमी को नहीं आता है और इसी को मैं बेअक्ली के नाम से संबोधित करता हूँ। बेअक्ली को दूर करने के लिए आज के बराबर कहीं दुनिया के परदे पर कभी ऐसा समय नहीं आया कि जब बेअक्ली के विरुद्ध लोहा लेने की जरूरत पड़ी हो। बेअक्ली कहाँ है? घर-घर फैली हुई है। गाँव-गाँव फैली हुई है। इसलिए सूरज के तरीके से घर-घर में रोशनी पैदा करने के लिए आपको घर-घर ही जाना पड़ेगा। इसके अलावा और कोई तरीका ही नहीं है। आज की परिस्थितियों में तो परिव्राजक अभियान के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रह गया।

मित्रो! वानप्रस्थ परंपरा प्राचीनकाल में भी आवश्यक रही होगी, लेकिन आज तो अनिवार्य हो गई है। आज तो इसके बिना काम चल ही नहीं सकता। आज तो जहाँ

पिछड़ापन है, वह आपके पास नहीं आएगा। आपको पिछड़ेपन के पास जाना होगा। नहीं साहब! पिछड़े लोग हमारे पास आएँगे, सत्संग सुनने के लिए आएँगे। बेटे, सत्संग सुनने कोई नहीं आएगा। नहीं साहब! हमने तो एक लाइब्रेरी खोल दी है, सो सब लोग ज्ञान की पुस्तकें पढ़ने आएँगे। आपके यहाँ कोई नहीं आएगा। अगर आपको लाइब्रेरी चलानी है, तो आप उपन्यास, गंदा साहित्य मँगाइए, जो पान बेचने वाले अपने यहाँ रखते हैं और दस पैसा रोज पर पढ़ाते हैं। ऐसी कथा-कहानियाँ जो लोगों को भ्रमित करती हैं, उनको पढ़ने वालों की भीड़ लगी रहती है।

जीवन-साहित्य, प्रेरक साहित्य पढ़ने आपकी लाइब्रेरी में कोई नहीं आएगा। उन्हें तो दीमक खा जाएगी और कीड़े खा जाएँगे। साहित्य ज्यों-का-त्यों अलमारी में रखा रहेगा, कोई भी पढ़ने नहीं आएगा। फिर क्या करना पड़ेगा? आपको घर-घर जाना पड़ेगा। लोगों में रुचि पैदा करनी पड़ेगी। पिछड़ापन अगर ऐसा रहा होता, जो कहता है कि हमारी जैसी ही तबाही आई है, तो वह कब का ठीक हो गया होता। उसको ज्ञान ही नहीं है, पता ही नहीं है। आदमी एक तरह से बेहोश है। बेहोश को होश में लाने के लिए, जाग्रति का संदेश पहुँचाने के लिए आपको घर-घर जाना चाहिए। आज की यह सबसे बड़ी सेवा है। आज मानवता की सेवा करने का इससे बेहतरीन कोई रास्ता नहीं हो सकता। इससे अच्छा उपाय और कोई नहीं हो सकता।

मित्रो! स्कूल से बात नहीं बन सकती। स्कूल से लड़के-लड़कियाँ पढ़ जाएँगे। पढ़ने से उनको बातचीत करने की तमीज आ जाएगी और कहीं-न-कहीं नौकरी करके रोजी-रोटी कमा लेंगे। छह रुपया रोज मजदूर को मिलता है। पढ़े-लिखे को सात-आठ रुपया मिल जाएगा। बिना पढ़ा आदमी धूप में घूमता है। पढ़ा-लिखा आदमी पंखे के नीचे बैठकर काम करेगा और कोई फायदा? बेटे, और कोई फायदा नहीं। गया-गुजरापन, पिछड़ापन पढ़े-लिखे और बिना पढ़े में बिलकुल बराबर है। अगर सच्ची बात मुझसे पूछो, तो मैं यह कह सकता हूँ कि बिना पढ़ों की अपेक्षा पढ़े-लिखों का पिछड़ापन और भी ज्यादा है। बिना पढ़ों की तुलना में चरित्र की दृष्टि से पढ़े-लिखे और भी गए-बीते हैं।

करें विद्या का विस्तार

इसलिए आपको विद्या का विस्तार करना होगा। ज्ञान का विस्तार करना होगा। लोक-शिक्षण का विस्तार करना होगा। चिंतन की शैली का विकास करना होगा। आदमी के चरित्र और गुण, कर्म, स्वभाव में कैसे हेर-फेर होना चाहिए? यह बताने के लिए आपके यहाँ वे लोग नहीं आएँगे। आपको ही उनके यहाँ जाना पड़ेगा। बाढ़ पीड़ित हमारे यहाँ आएँ, तो हम रोटी खिलाएँगे, पर वे नहीं आ सकते। वे स्वयं पानी में डूबे पड़े हैं और घर-मकान भी। बच्चे बिलख रहे हैं। हमारा मकान खराब हो गया है। हम आपके यहाँ नहीं आ सकते। अगर आप कुछ कर सकते हों, तो रोटी का पैकेट यहीं भिजवा दीजिए, तब तो आपके लिए धन्यवाद है। नहीं, हम नहीं आ सकते। आप रोटी के लिए हमारे यहाँ आ जाइए। नहीं साहब! हमारे पास साधन नहीं हैं। हम आपके पास क्यों आएँगे? उतने समय में तो मेहनत-मजदूरी करके रोटी खा लेंगे।

मित्रो! सत्संग के लिए आप अपने यहाँ मत बुलाइए कि हमने सत्संग भवन बना लिया है। सत्संग भवन में आप ताला बंद करके रखिए। सत्संग भवन में नुमाइश लगा दीजिए। सत्संग भवन में उनको बुला लीजिए जो बुड्ढे, मरे-गिरे, सड़े-बुसे हैं, जिनके लिए कहीं जगह नहीं मिलती है। घर में सबसे लड़ाई होती रहती है। ऐसे लोग आकर के समय बिताने के लिए बैठ जाएँगे आपके सत्संग भवन में। हाँ स्वामी जी! हनुमान जी का सत्संग होगा। हाँ, पहले देख तो लो कि सत्संग भवन में कौन बैठा है? ये बैठे हैं ऐसे बुजुर्ग, जिनको कहीं कोई जगह नहीं है। न घर में जगह है, न पड़ोस में। हमउम्र कोई रहा नहीं। बच्चे जिन्हें चिढ़ाते हैं, खीजते हैं। घर से भगा देते हैं। ऐसा व्यक्ति जाए कहाँ? सो सत्संग में जा बैठता है।

मित्रो! क्या करना पड़ेगा? घर-घर जाना पड़ेगा। सत्संग में अगर वास्तव में आपकी कोई रुचि है, आपको वास्तव में कोई जानकारी है, तो आपको अलख निरंजन के तरीके से घर-घर अलख जगाना पड़ेगा। घर-घर में ज्ञान बिखेरना पड़ेगा और घर-घर में पानी पहुँचाना पड़ेगा। इसके अलावा कोई और तरीका है ही नहीं। आज की परिस्थिति में परिव्राजक योजना की कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह

हम छाप भी चुके हैं और बता भी चुके हैं और मित्रो! हम यह कहते रहेंगे कि हमारी प्राचीनकाल की परंपराओं को पुनर्जीवित करने के लिए हमको परिव्राजक योजना को जीवित ही करना पड़ेगा। इसके अलावा संस्कृति पिछड़ी ही पड़ी रहेगी। धर्म की आत्मा मूर्च्छित ही पड़ी रहेगी। अध्यात्म का दर्शन हो ही नहीं सकता। भगवान की भक्ति किसे कहते हैं? लोग समझ ही नहीं सकेंगे। व्यक्तित्व और चरित्र का विकास-उत्थान करने के लिए कोई रास्ता खुल ही नहीं सकेगा। बस, एक ही रास्ता है कि हम घर-घर जाएँ और लोगों को जाग्रत करें।

[आज की बात समाप्त]

॥ ॐ शांति ॥

मरते हुए पिता ने अपने पुत्र बैजू से कहा—"मेरी अंतिम घड़ी आ पहुँची है और मुझे दुःख मात्र इस बात का है कि अपने अभिमान में मत्त होकर तानसेन ने मुझे अपमानित किया और मैं उसका बदला न ले सका।" पुत्र ने पिता को प्रतिशोध लेने का आश्वासन दिया। पिता की मृत्यु के पश्चात एक दिन बैजू तानसेन को मार डालने के निश्चय के साथ उसके घर में घुसा तो देखा तानसेन संगीत-साधना में लीन है। बैजू के मन में विचार आया कि संगीत-साधना में निमग्न व्यक्ति को मारने से तो स्वयं का ही पतन होगा।

बैजू ने अपने प्रतिशोध लेने के मार्ग को परिवर्तित करने का निश्चय किया। उसने भी संगीत-साधना का मार्ग चुना और धीरे-धीरे वह उसमें ऐसा निमग्न हो गया कि खाना-पीना-सोना सब कुछ भूल गया। लोग उसे 'बावरा' कहने लगे। उसकी ख्याति चहुँ ओर फैलने लगी और उसका संगीत सुनने लोग दूर-दूर से आने लगे।

उसकी प्रसिद्धि अकबर के कानों तक भी पहुँची तो वह अपने पूरे मंत्रिमंडल के साथ बैजू से मिलने उसकी झोंपड़ी पर पहुँचा। बैजू का संगीत सुन सब मंत्रमुग्ध रह गए। अब तानसेन ने प्रत्यक्ष हार स्वीकारते हुए कहा—"जहाँपनाह! मैं जरूर आपको प्रसन्न करने के लिए गाता हूँ, पर बैजू तो माँ सरस्वती का उपासक है, उन्हीं के लिए गाता है।" ईश्वरभक्ति में निमग्न बैजू की प्रतिशोध भावना नष्ट हो चुकी थी, उसे यह ध्यान भी नहीं था कि उसे तानसेन से बदला लेना था, तब भी उसका प्रतिशोध सही अर्थों में पूर्ण हो चुका था।

विश्वविद्यालय परिसर से—191

घर-घर अलख जगाता विश्वविद्यालय

जिन परिस्थितियों में जीवन प्राप्त करने का अवसर या यों कहें कि सौभाग्य, हमें प्राप्त हुआ है—ये परिस्थितियाँ निश्चित रूप से अभूतपूर्व और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ हैं। मानवता के इतिहास में इससे ज्यादा विषम और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों का आगमन पहले कभी हुआ नहीं। ऐसा इसलिए; क्योंकि परिस्थितियाँ युग विभीषिका की और युग संधि की परिस्थितियाँ हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने वर्षों पहले लिखा था कि इन्हीं परिस्थितियों में असुरता के अंत और देवत्व के प्राकट्य की पटकथा लिखी जानी है, अत: इन परिस्थितियों के वैषम्य को कोई नकार नहीं सकता है।

इस वर्ष इन्हीं विषम परिस्थितियों के मध्य में दो दुर्लभ संयोग भी घटित हो रहे हैं। यह वर्ष शांतिकुंज की स्थापना का स्वर्ण जयंती वर्ष है तो यही वर्ष हरिद्वार के पूर्ण कुंभ का वर्ष भी है। निश्चित रूप से जब इस तरह के दुर्लभ संयोग घटित होते हैं तो मानवता के सम्मुख चुनौतियाँ भी अभिनव स्वरूप ले करके आती हैं। ऐसे में गतिविधियाँ भी नूतन तथा नवीन संकल्प को धारण किए होती हैं।

ये ही कारण हैं कि इस वर्ष देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने शैक्षणिक गतिविधियों के अतिरिक्त गायत्री परिवार के इस वर्ष के संकल्प को भी जन-जन तक पहुँचाने का निर्णय किया है। इस वर्ष गायत्री परिवार—'आपके द्वार-पहुँचा हरिद्वार' के चिंतन को घर-घर तक पहुँचाने के भाव से कार्यरत है और देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने भी इसी संकल्प को मूर्तरूप देने का निश्चय किया है।

इसको ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रत्येक संकाय एवं प्रत्येक विभाग के सदस्य एक अनवरत क्रम में हर घर तक जाकर दीपयज्ञ कराने, पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी का संदेश पहुँचाने एवं मनुष्य में देवत्व का उदय तथा धरती पर स्वर्ग का अवतरण का चिंतन प्रदान करने का अद्भुत कार्य करते दिखाई पड़ते हैं।

यह देखकर एक सुखद आश्चर्य होता है कि एक अल्प अवधि में ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सदस्यों के द्वारा हजारों दीपयज्ञों का क्रम संपन्न करा दिया गया। अनेकों नए परिवारों के द्वारा दीक्षा ली गई, अनेकों नए परिवार अखण्ड ज्योति की सदस्यता से लाभान्वित हुए तथा अनेकों नए परिवार शांतिकुंज आकर उसकी गतिविधियों में सम्मिलित होने के सौभाग्य को प्राप्त कर सके। सही पूछा जाए तो यह वर्तमान परिस्थितियों में एक शैक्षणिक संगठन के द्वारा आस्था के आलोक को जगाने का अतुलनीय प्रयास कहा जा सकता है।

जन-जन में अलख को जगाने के अद्भुत प्रयास को करने के अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने सामाजिक सरोकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को भी विगत दिनों प्रदर्शित किया। इस हेतु देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विगत दिनों सूचना का अधिकार अधिनियम पर एक विशेष कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री जे०पी० ममगई, राज्य सूचना आयुक्त, उत्तराखंड शासन द्वारा की गई। इस कार्यशाला के माध्यम से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विभिन्न सदस्यों ने इस महत्त्वपूर्ण अधिनियम के संदर्भ में सभी प्रासंगिक बिंदुओं का अध्ययन किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के इन्क्यूबेशन सेंटर द्वारा एक विशेष कार्यशाला का आयोजन भी किया गया, जिसका उद्देश्य वैदिक ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में इनोवेशन जैसे महत्त्वपूर्ण विषय को समझना था। इस कार्यशाला में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ टेक्नोलॉजी, मैनेजमेंट एंड कम्युनिकेशन के संकायाध्यक्ष प्रो0 अभय सक्सेना द्वारा एक उल्लेखनीय वेबिनार को संबोधित किया गया।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने वर्तमान समय में युवा विषय पर आयोजित एक ऑनलाइन संभाषण प्रतियोगिता में बढ़-चढ़कर भाग लिया एवं सुश्री दिव्या भारती तथा सुश्री धृति पोसवाल एवं श्री गौतम कुमार द्वारा मुख्य स्थान प्राप्त किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने कोविड-19 के वैश्विक संक्रमण के चुनौतीपूर्ण समय में भी विद्यार्थियों के परीक्षा-क्रम को बाधित नहीं होने दिया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में

विगत शैक्षणिक सत्र में प्रविष्ट हुए विद्यार्थियों की प्रथम सत्रांत परीक्षा ऑनलाइन माध्यम से कुशलतापूर्वक संपन्न कराई गई।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के परीक्षा नियंत्रक प्रो0 कृष्णा झरे ने इसे एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बताते हुए कहा कि ऐसी परिस्थितियों में जब विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भारत के प्रत्येक कोने में विद्यमान हैं एवं इंटरनेट की उपलब्धता से लेकर अन्य चुनोतियाँ हमारे सामने उपस्थित हैं—इन सत्रांत परीक्षाओं का बिना किसी विघ्न के समुचित तरीके से संपन्न हो जाना परमपूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद का ही प्रतिफल है। ❑

राजा जनमेजय वेश बदलकर प्रजा की वास्तविक स्थिति, उनके सुख-दुःख को जानने हेतु प्रायः भ्रमण किया करते थे। इसी भ्रमण के दौरान एक बार उन्होंने देखा कि कुछ लड़के खेल रहे थे। शासक बना लड़का कुलेश सभासदों से कह रहा था—"तुम जनमेजय के राज्याधिकारियों की तरह भोग-विलासपूर्ण जीवन जीना छोड़ दो अन्यथा मैं तुम्हें सेवा से च्युत कर दूँगा। मैं प्रजा की हानि नहीं होने दूँगा।" राजा जनमेजय उस लड़के कुलेश से बहुत प्रभावित हुए और उसे ले जाकर महामंत्री बना दिया। वह लड़का अपने साथ अपनी कुदाली, लाठी व अँगोछा भी ले गया था।

कुलेश ने महामंत्री के रूप में अपने कार्यों से राजा व प्रजा, दोनों को प्रसन्न कर दिया, परंतु जिन सभासदों के विलासितापूर्ण जीवन पर अब रोक लग गई थी, वे कुलेश को अपदस्थ करने का षड्यंत्र करने लगे। सभासदों ने जनमेजय से कहा कि कुलेश ने अवैध संपत्ति जमा कर ली है। महाराज इनकी बातों पर विश्वास करके कुलेश के घर सैनिकों सहित तलाशी लेने पहुँच गए। बाहरी कमरे में उन्हें कोई संपत्ति नहीं दिखाई दी। तभी उन्हें अंदर वाला कमरा दिखाई दिया।

उन्होंने कुलेश से पूछा—"तुमने इस अंदर वाले कमरे में क्या छिपाकर रखा है?" कुलेश राजा को कमरे के भीतर ले गया, वहाँ उसकी लाठी, कुदाली व अँगोछा रखा था। उसने कहा—"महाराज! मैं यहाँ इन तीनों वस्तुओं की पूजा करता हूँ, ताकि मुझे अपनी वास्तविकता याद रहे।" यह कहकर कुलेश अपनी तीनों वस्तुओं को लेकर चला गया, राजा पछताते रह गए। आज देश को कुलेश जैसे कर्मचारियों की आवश्यकता है।

अपनों से अपनी बात

मानवीय दृष्टिकोण के परिवर्तन को समर्पित 'शांतिकुंज'

मनुष्य के जीवन में उपस्थित होने वाली परिस्थितियाँ, उसके स्वयं के कर्मों का परिणाम मानी जाती हैं। जैसे बीज से वृक्ष बनता है, वैसे ही कर्मबीज ही आगे चलकर पुष्पित, पल्लवित होकर परिस्थतियों का स्वरूप एवं आकार ले लेते हैं।

कुछ ऐसा ही मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ भी घटता है। हमारे मन में उठने वाले विचार बीज रूप में होते हैं। जब उनको इच्छा, भाव, संकल्प के रूप में वैसा सहयोग मिल पाता है, जैसा बीज को विकसित होते समय खाद-पानी एवं धूप का मिलता है तो विचार, मान्यताओं का रूप ले लेते हैं।

ये मान्यताएँ ही हमारे चरित्र का निर्माण करती हैं और जब वो चरित्र, व्यवहार में उतरता है तो व्यक्तित्व को आकार देने लगता है। जैसा व्यक्तित्व हो, वैसे ही कर्म बन पड़ते हैं। दुष्प्रवृत्तियों वाले व्यक्तित्व से सदाचरण की आशा करना निरर्थक है। ऐसे ही सत्प्रवृत्तियों वाले व्यक्तित्व से दुराचरण बन पड़ेगा, ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इस व्यवस्था को यहाँ लिख पड़ने का उद्देश्य मात्र इतना है कि यदि यह तत्त्वदर्शन समझ में आ जाए तो वर्तमान समय में मानवता के सम्मुख सुरसा के मुँह की तरह से अपना विस्तार दिखाती अनेक समस्याओं का मूलभूत कारण जाना जा सकता है। हम कर्म, अपनी प्रवृत्ति और व्यक्तित्व के अनुरूप ही करते हैं और हमारी परिस्थितियाँ, हमारे कर्मों के अनुरूप गढ़ी जाती हैं और हमारे उत्थान-पतन, सुख-दुःख, यश-अपयश का कारण ये परिस्थितियाँ ही हैं।

वर्तमान समय में हम ज्यादातर लोगों को शरीर के रोगों, मन की बेचैनी, परिवारों के झगड़े, समाज के संकटों से घिरा पाते हैं, पर यदि उनके मूल कारण को जान पाने का प्रयत्न किया जाए तो यह सत्य सहजता से अनुभव किया जा सकता है कि इन अपरिमित विडंबनाओं का मूल कारण—मनुष्य की चिंतनशैली में आई दरिद्रता है, और कुछ नहीं।

सच पूछा जाए तो शरीर तो कामनाओं की पूर्ति का, कर्म को करने का माध्यम भर है—उसका नियंत्रणकर्त्ता मन ही है। मन यदि कोई कामना प्रस्तुत कर दे तो शरीर उसकी पूर्ति के लिए नाचता नजर आता है, इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने हमारी आत्मिक शक्ति को ही हमारा मित्र या हमारा शत्रु कह करके पुकारा है। हमारा अंतःकरण—भावनाओं, विचारणाओं और आकांक्षाओं से ही तो निर्मित होता है, इसलिए यह समझ लेना अत्यंत जरूरी हो जाता है कि जैसा मन चाहता है, वैसा ही व्यक्तित्व का स्वरूप तैयार हो जाता है।

मन अपने अनुरूप संसार का निर्माण कर लेता है। जैसा मन—वैसी चिंतनशैली, जैसी चिंतनशैली—वैसा व्यक्तित्व, जैसा व्यक्तित्व—वैसे कर्म और जैसे कर्म—वैसी परिस्थितियाँ। इसलिए यदि सुधार की या परिष्कार की कोई आवश्यकता है तो वह मनुष्य के विचार-क्षेत्र में, मानसिक स्तर पर है—अन्य कहीं नहीं।

चिंतनशैली की दिशा बदल जाए तो मनुष्य महामानव, साहित्यकार, वैज्ञानिक बनता देखा जाता है। जैसे मूर्तिकार अनगढ़ पत्थर को पूजनीय प्रतिमा में बदल देता है, वैसे ही इनसान चाहे तो चिंतनशैली का परिमार्जन करके व्यक्तित्व को मनचाहे साँचे में ढाल सकता है और परिस्थितियों को इच्छानुरूप दिशा में ले जा भी सकता है। इसे बदलने के लिए किसी देवी-देवता के आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता मात्र अपने स्वयं के संकल्प को इस कदर जगाने की है कि उलझन भरी परिस्थितियाँ, स्वर्गीय वातावरण में बदल जाएँ।

यह सिद्धांत एक व्यक्ति पर नहीं, वरन संपूर्ण मानवता पर लागू होता है। व्यक्ति-व्यक्ति से मिलकर ही समाज बनता है। यदि सिर्फ उपस्थित परिस्थितियों के निवारण के लिए समाधान खोजे जाएँ, परंतु जिस मानसिकता के कारण वो परिस्थितियाँ विनिर्मित हो रही हैं—उनके समाधान के लिए कुछ भी न किया जाए तो यह उपक्रम ऐसा ही है, जैसे

रोगी व्यक्ति के घाव को धोकर यों ही छोड़ दिया जाए, परंतु घाव सूखने के लिए कोई औषधि उसे न दी जाए। ऐसा करने से कुछ का मन भले ही बदल जाता हो, परंतु समस्या का स्थायी समाधान नहीं निकल पाता है। उलझनें यथावत् बनी रहती हैं। समस्याएँ कुछ दिन शांत रहने के बाद पुनः उग्र रूप धारण करके प्रकट हो जाती हैं।

ये बातें महत्त्वपूर्ण इसलिए हैं कि विचारों के इसी परिवर्तन के लिए परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज की स्थापना की। वर्तमान समस्याओं की जड़ें मनुष्य के दृष्टिकोण में हैं। आज जनसामान्य की आस्थाएँ, मान्यताएँ बिगड़ी हुई नजर आती हैं। फिर जैसी मान्यताएँ सबकी हों, सामूहिक परिस्थितियाँ भी वैसी ही बन जाने लगती हैं। यदि सम्मिलित मानसिकता विकृत हो तो सभी को उसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

ऐसे में समाधान एक ही है कि व्यक्ति के दृष्टिकोण में, चिंतन में उत्कृष्टता को समाविष्ट किया जाए। उसकी प्रवृत्तियों में आ बैठी कुसंस्कारिता को समूल उखाड़ फेंका जाए। दिखने में कठिन कार्य समझ पड़ता है, पर यदि कई प्रतिभावान, भावनाशील, संकल्पनिष्ठ मनुष्य एक साथ इस प्रयास को करें तो यह कार्य फिर असंभव नहीं रह जाता। शांतिकुंज की स्थापना के पीछे परमपूज्य गुरुदेव का उद्देश्य ही था कि मानवीय दृष्टिकोण के परिष्कार का यह दिखने में असंभव कार्य, सहजता से संभव हो सके।

पूरे विश्व में जब राजशाही थी, तब जनतंत्र का विचार स्वप्न-सा लगता था, पर देखते-देखते वो क्रांति भी घट गई और आज राजशाही चुनिंदा राष्ट्रों तक सिमटकर रह गई है। साम्यवाद की स्थापना, डिजिटल क्रांति कुछ इसी क्रम के उदाहरण हैं; फिर क्या कारण है कि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट विचार क्रांति संभव न हो सकेगी। इस दिव्य योजना को साकार रूप दे पाना भी निश्चित रूप से संभव है, शर्त एक ही है कि प्रयत्न छिटपुट ढंग से न करते हुए, सम्मिलित रूप से, सुनियोजित ढंग से, उद्देश्यपूर्वक तरीके से किए जाएँ।

शांतिकुंज आश्रम की चेतना इसी विचारक्रांति-अभियान पर निर्भर है। परमपूज्य गुरुदेव ने इस विचार क्रांति के तीन स्वरूप बताए—बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रांति और स्वाध्याय, सत्संग एवं सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन को उन्हें प्राप्त करने के तीन लक्ष्य साधन कह सकते हैं। स्वाध्याय एवं सत्संग—दोनों के ही लिए परमपूज्य गुरुदेव ने युगसाहित्य का सृजन किया।

तीन हजार से ज्यादा, मानवीय विकास के समस्त पहलुओं को ध्यान में रखते हुए युगऋषि ने दैवी संकल्प की तरह इस साहित्य का सृजन किया है और उसके एक-एक शब्द को मानवता के संविधान के रूप में देखने की जरूरत है। उनके द्वारा रचित साहित्य स्वाध्याय का भी आधार है और सत्संग का भी। इसीलिए शांतिकुंज के द्वारा इन दोनों ही प्रयासों को गंभीरता से लिया गया है।

वर्तमान समाज में नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्रों में अनेकों कुरीतियाँ प्रचलित हैं, जिनके निराकरण के लिए शांतिकुंज को आगे बढ़कर लाया गया। चाहे वो जाति के आधार पर समाज को नष्ट करने के प्रयास को रोकने का संकल्प रहा हो, चाहे वो खरचीली शादियों को बंद करने का प्रयास रहा हो, चाहे वो पर्यावरण संरक्षण का दायित्व हो अथवा आपदा प्रबंधन का—शांतिकुंज ने इन सभी कर्त्तव्यों का निर्वहन भली भाँति किया है और आज विचार क्रांति की एक पौधशाला के रूप में विश्व पटल पर उभरकर आया है।

इसीलिए जो कार्यकर्त्ता शांतिकुंज, ब्रह्मवर्चस, देव संस्कृति विश्वविद्यालय में कार्य करते हैं—उनकी योग्यता और त्याग भावना का विवरण लिया जाए तो देखा जा सकेगा कि एक ही स्थान पर ऐसे हीरे कहीं और सुरक्षित नहीं मिलेंगे। पूछने पर पता चलेगा कि इनकी उत्कट आदर्शवादिता ही इन्हें यहाँ खींचकर लाई है। अपनी कामनाओं को लात मार के स्वयं को एक आदर्श लोकसेवी के रूप में प्रस्तुत करने और अपनी सेवा-साधना से जन चेतना में सत्प्रवृत्तियाँ उभारने की ललक ही इन्हें, इनके कार्यों में लगाए रखती है। इनमें से न जाने कितने उच्च शिक्षित पदाधिकारी, सफल उद्योगपति रहे हैं, पर वे उसको त्यागकर ब्राह्मणोचित जीवन यहाँ पर शान से जीते नजर आते हैं।

शांतिकुंज आश्रम में विचार क्रांति के इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए समर्पित, संकल्पनिष्ठ, विनम्र, कर्मठ कार्यकर्त्ता सहजता से देखे जा सकते हैं। मानवीय विचारणा में व्याप्त दुष्प्रवृत्तियों, दुश्चिंतन को उखाड़ फेंकना ही इस परिसर के प्रत्येक कार्यकर्त्ता का एकमात्र जीवनोद्देश्य कहा जा सकता है। जो कार्यकर्त्ता इस व्यवस्था में जुड़ पड़ते हैं, वे स्वयं को सौभाग्यशाली मानते हैं। मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन, परिशोधन एवं परिष्कार शांतिकुंज आश्रम की स्थापना का एक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य कहा जा सकता है। ❑

शुद्ध बुद्ध प्रज्ञावतार

सम्यक ज्ञानदृष्टि जग भर को, दिया बुद्ध ने है आधार।
प्रज्ञा के अवतार पूज्य ने, किया उसी का है विस्तार॥

मन की भाग-दौड़ में लाना,
संयम बोध विचार है।
राग - द्वेष - मद - काम - क्रोध,
ईर्ष्या दुःख का भंडार है।

समता के भावों में जनमन, को करना होगा स्वीकार।
प्रज्ञा के अवतार पूज्य ने, किया उसी का है विस्तार॥

साँसों का आधार जगत् के,
जीवन का व्यापार है।
सम्यक गति साधना श्वास,
सुसौभाग्यों का द्वार है।

सजग चित्त से ध्यान लगाना, सिखलाया तुमने हर बार।
प्रज्ञा के अवतार पूज्य ने, किया उसी का है विस्तार॥

सत्य, अहिंसा, शौच, अपरिग्रह,
जग भूषण व्यवहार है।
मानव बुद्धि विचार, आचरण,
में गुण भरे अपार है।

जन्मों के संचित विकार को, बढ़ो मिटाने अब साभार।
प्रज्ञा के अवतार पूज्य ने, किया उसी का है विस्तार॥

न्याय, प्रेम, सौहार्द, शांति,
समरसता जीवन सार है।
सहकारों से भरा हुआ,
मानव जीवन उपहार है।

नवयुग की अगवानी को हम, शुद्ध बुद्ध बन हों तैयार।
प्रज्ञा के अवतार पूज्य ने, किया उसी का है विस्तार॥

—शोभाराम शशांक

वसंत पर्व—2021 के पावन अवसर पर युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार में संपन्न विभिन्न संस्कार एवं मंगल शोभायात्रा

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-04- 2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार में सोल्लास संपन्न 'वसंत पर्व' की कतिपय झलकियाँ

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, पीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org